श्वेताम्बर जैन धर्मोपदेशक यतिवर्य श्रीमन्महाराज
श्री बालचन्द्रजी मुनि

[नजर.]

जनाब-फैजमाब-मख्जनेइल्म-मोअलउल-अल्काब-
जैनश्वेताम्बर-धर्मोपदेष्टा-विद्यासागर-न्यायरत्न-
महाराज-शान्तिविजयजी-साहब,-!

आप मुल्क बमुल्क फिरकर धर्मकी-वाज करतेहै और हरहमेश धर्मको तरक्की पहुचातेहै । नये नये जैनधर्मके ग्रंथ तयार करके जैन श्वेताम्बरोंको फैज बख्शतेहै । और आप मेरे विद्यागुरहै । इन वजुहातोंसें आपकी खिदमत-शरीफमें यह किताब-बतौर-नजर-पेशहै ।

आपका-नियाजमंद
(विनीत-)
बालचंद्र-मुनि,-

भूमिका

श्लोक,-

परार्थव्यासगादुपजहदपि स्वार्थपरतामभेदैकत्व
यो वहति गुण भूतेषु सततम् ।
स्वभावाद्यस्यान्त स्फुरति ललितोदात महिमा ।
समर्थोयोनित्यं स जयति तरा कोऽपि पुरुष ॥
(जगन्नाथराय)

अर्थ -स्वार्थको त्यागकरके परार्थकेलिये सर्वमनुष्योंको जो सतत भेदरहित एकभावसें देखतेहैं, जिन्के अ त करणमें स्वभावहीस सुन्दर तथा श्रेष्ठमहिमा स्फुरण होताहै और जो नित्य दूसरोंके दु ख दूर करनेंमें समर्थहै ऐसे सत्पुरुष जयपावे !

प्रिय पाठक वृन्द !

प्रस्तुत छापखानोंकी भारतमें प्रचुरताहो जानेके कारण अनेक विषयोंसे सबध रखनेवाले कई ग्रथ छपकर प्रतिवर्ष प्रकाशित होते हैं। विद्वानोंको लेखणीद्वारा अपने विचार ससारमें फैलाना बहुत आशा न होगयाहै । व्याख्यान सभाके नियमोंके सबधमें-स्वतत्रग्रथ मेरीदृष्टिसें देखनेमें न आनेसें और दिनोंदिन व्याख्यान सभामें अनवस्था-असभ्यताकी वृद्धि होतीहुई देख-इसविषयका एक स्वतत्र ग्रथ लिखनेकी मेरी ईच्छाहुई और वह ईच्छा आज पूर्ण सिद्धिको प्राप्ति हुई मै मानताहू ।

न दीसूत्र प्रभृति आप्तप्रणीत ग्रथोंमें श्रोता-वक्ताके सबधम-अनेक स्थानोपर उल्लेखहै और जैनाचार्य-श्रीमान् हरिभद्रसूरि रचित

"लोकतत्व निर्णय" नामके ग्रंथमे श्रोताओंके सबंधमे कुछ २ उ-ल्लेखकियाहै परंतु सभाके नियमोंके संबधमें जैसाः—डा. मं, पालग्रेव, क्रिथ, स्मिथ, ल्युसी, सर आर्सकिनमेने, ब्राउट, टेलर, फेल्ट, प्रभृति पश्चिमात्य विद्वानोके लिखेहुवे इग्रेजी भाषामें ग्रंथ दृष्टिगत होतेहै तैसा एकभी ग्रंथ—व्याख्यान सभाके सबंधमें आधुनिक—किसी—जैन विद्वानद्वारा लिखा हुवा नही दीखपडता. यदि किसीने लिखाहो, या कोई प्राचीनग्रंथ इस विषयका किसीके पासहो और वह मुझें सूचना करेगा तो मुझें बडाही हर्ष होगा ?

जैन गुरुओंके उपदेशका योग्यलाभ संसार नही लेसकता इसका यदि खासमतलब देखाजायतो—सभाकी अनवस्था—और असभ्यताही माननाहोगा। और वह अनवस्था दूर करनेको एक ग्रंथकी सहायता अवश्य चाहिये जिससे श्रोता—वक्ताओंको विचार करनेकी प्रवर्तिहो, इस विचारसे मैंने यह ग्रंथ लिखाहै, यद्यपि इसग्रंथमें कई त्रुटीयेंभी रहीहोगी तथापि जो कुछ लिखागयाहै वह व्याख्यान सभाकी सु-व्यवस्था रहनेके हेतुसे लिखागयाहै इसकारणसे विद्वानोंको अवश्य रूचीकर होगा यह मुझे दृढविश्वासहै। मुझेयहभी प्रतीत होताहैकि—इसग्रंथको देखकर कई अल्पज्ञ नाराजभीहोंगे किन्तु उनकी नाराजीसे मेरी यत्किञ्चित्‌भी हानी मालूम नहीहोती।

यदि इसग्रंथमें लिखे हुवे नियमोंके अनुसार वर्तावकरना विद्वानोंको योग्यमालूमहो तबतो जैनसमाजसे उक्त नियमोंको पालन करनेका प्रबंधकरना आवश्य कीयहै यदि जिन २ बातोंके संबधमें कुछ मतभेद मालूम होतो लेखी—चर्ची चलाकर उसका निर्णयकरके सर्व सम्मतिद्वारा तय करलेनाचाहिये।

मैंने यहग्रंथ ईर्ष्या वा द्वेषसे किसीपर आक्षेप करनेको नही लिखाहै किन्तु—जैनोंकी वर्तमान व्याख्यान प्रणाली भविष्यमें सुधरे

और जैन धर्मकी उन्नतिहो इस हेतुसे लिखाहै इसमें यदि जिनाज्ञा विरुद्ध किसी स्थानमें लिखा हुआ मालूमहोतो पाठक वर्ग मुझे उक्त भूल सुधारनेकी सूचना करें–यदि उक्त सूचना युक्ति युक्त होगी तो धन्यवाद पूर्वक–भूल सुधारदी जायगी और यदि दुराग्रहसें कोई कुछटीका करेगातो उसका योग्य उत्तर अवश्य मिलेगा।

इस ग्रंथका दोदोवार प्रुफ देखने परभी अनुस्वारादिककी कहीं कहीं अशुद्धिया रहगई है। इसका यहकारणहै कि–यहग्रंथ अमदावाद–(गुजरात) में छपायागयाहै और वहाके कम्पोझीटर हिन्दीके अनभिज्ञ होनेके कारण–यह हुआहै इसस जहापर कुछदोष मालूमहो वहांपर पाठक सुधारकरके पढे ?

" ग्रंथ कर्त्ता "

बालचन्द्र मुनि ।

व्याख्यान-परिषद्विचार ॥

मंगलाचरणम् ।

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशाङ्गं विशालं ।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगण वृषभै र्धारितं बुद्धिमद्भिः ॥
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफल ज्ञेयभाव प्रदीपं ।
भक्त्या नित्यं प्रपद्ये श्रुतमहमखिल सर्व लोकैकसारम् ॥ १ ॥

इस पृथिवी के पर्दैपर जहांतक धर्मसंस्थापक, वा प्रवर्तक अथवा आचार्य-उपाध्याय, निस्पृहता पूर्वक उपदेशद्वारा धर्मोन्नतिकी चेष्टा करते रहते हैं तहां तक धर्म अवनतिके पथको नहीं ग्रहण करता और इधर उपदेशका बल घटाकि, धर्मग्लानीका समय निकट आया मानलेना चाहिए। यह अनादि कालका अबाधित सिद्धान्त है। जैनधर्मके सुविहित आचार्य-उपाध्याय और साधु जितने भूत पूर्व हो गये हैं उन्होंने उपदेश द्वारा जैनधर्मकी जडको मजबुत (द्रढ) करनाही अपना पवित्र कर्तव्य मानाथा वे बडेही प्रतिभाशाली उपदेष्टा होगये हैं, उनकी वाणीका असर जन समाजपर विद्युच्छक्तिसा गिरताथा, उन्होंने अपनी वाणीके बलसे लाखों नहीं

१. संसारमें अनेक कामोंके साथ संबंध रखनेवाली सभाएँ हुआ करती हैं जैसाकि, राजकीय-पालिमेन्ट सभा, समाजसुधारेकी सभा, व्यापारी कम्पनीयोंकी सभा, वाद-विवादात्मक सभा और धार्मिकसभा यहांपर इस सभासे मतलबहैकि जो जैनोंमें गुरुव्याख्यान वाचते हैं और श्रावक सुनते हैं।

करोडोंहीं मनुष्योंको जैनी बनाकर धर्मको उन्नतिके शिखरपर पहुचा दिया था। वर्त्तमानमें जो जैन वाङ्मय और जैनसमाज दृष्टिगत होताहै यह उन्हीं महात्माओंके परिश्रमका फल है। हम यह निःसन्देह-द्रढता पूर्वक कह सकते हैं कि, जैनोंके तीर्थंकर-गणधर बडेही प्रतिभाशाली वक्ता एवं श्रम सहिष्णु, विचारवान् त्रिकालदर्शी-सर्वज्ञ होचूके हैं, तत्ववेत्ताओंमें जिनका प्रधानपद था उन्होंने असख्य स्त्री-पुरुषोंको सनमार्गमें उपदेशरूप शास्त्रसेही लगायेथे और यह बात सिद्ध सम्मतहै कि, लाखो करोडोंही नहीं असख्य स्त्री-पुरुषोंके मनपर एक व्यक्तिने अधिकार जमालेना, यहबात नबाद्वारा हो शक्ति है और न खुशामद द्वारा यह शक्ति केवल उपदेशमेंही है। और इसीलिए हमारे पूर्वजान इसे सर्व कार्योंमें प्रधानपद दे रक्खाथा। सम्प्रति जैनके उपदेशकोंने उपदेशकी ओर जैसा दुर्लक्ष करना प्रारभ किया है वैसाही ससार उनपर दुर्लक्ष करने लग गयाहै इसलिये अपना और ससारका अभ्युदय इच्छक जैनोपदेशकोंको उचितहै कि इस ओर दुर्लक्ष न करें क्रियाकांड प्रभृति अन्यान्य सभी कार्यों को गौण मानकर प्रधानपदपर उपदेशको रक्से जिससे ससारका अभ्युदय हो। इहलोक, परलोकका साधन, कीर्तिका सम्पादन, एवं ससारका उपकार करनेका मुख्य उपाय उपदेशही है। जगतारक-तीर्थंकरोंने अनन्त प्राणिगणोंको उपदेशद्वारा डूबतोंको सन्मार्गपर लाकर तार दिये और इसी प्रकार सुविहित जैनाचार्योंनेभी इसी मार्गका सादर स्वीकार किया। जिस धर्मके आचार्य उपाध्याय प्रभृति उपदेशगण आलसी, स्वार्थी, ऐहीक सुखाभीलाषी हुवेकि मानो उपदेशम शिथिलता आपहुची। वक्ता स्वार्थी होजानेपर सत्य उपदेशम परिवर्तन हुवे विना कभी नही रह सकता। और उपदेशमें शिथिलता आ

जानेपर सत्यमार्गके स्थानपर अनेक कुप्रथाएँ समाजको घेरे विना कभी नही रह सकती और अन्तमें उक्त समाजको अनेक आपत्तियोंसे सामना करना पडता है। यह बात इतिहाससेभी सिद्ध है। तीर्थंकर-गणधर और प्रभाविक आचार्योंके समयपर राजा महाराजा प्रभृति कोट्यावधी जैनी भारतवर्षमे निवास करतेथे और वर्तमानमें केवल १३-१४ लाखके प्रमाणमें संख्या गीनी जाती है इस बातका कोइ जैनधर्माभिमानी क्यों नहीं विचार करता? यदि इसका प्रधान कारण देखा जाय तो सत्योपदेशका अभाव अथवा सत्योपदेश प्रणालीमे परिवर्तन हुआही कहना होगा!

हमारे तीर्थंकरोंनें इस सारे ससारपर और विशेषतया भारतवर्षपर बडा भारी उपकार कियाहै। वर्तमान में जैन सिद्धान्त अटल विद्यमान दृगगत होते हैं यह उन्हीं महात्माओंकी कृपाका फल है। वे जहापर मिथ्याधर्मका अधिक जोर-शार देखते थे तहापर अवश्य जाया करतेथे, व देव रचित समवसरणपर पद्मासनस्थ स्थित होकर सत्यधर्मका उपदेश करते थे। उनकी अकाट्य युक्तियोंसे अनेक मिथ्याभिमानी, एव-आडम्बरी विद्वान अपने मिथ्याभिमानको त्याग उन महात्माओंका शरण ग्रहण करते थे। अन्तिम तीर्थंकर श्रीमन्महावीर स्वामीको हुए आज २४३७ वर्ष हुवे है ततः पश्चात् अनेक प्रभवशाली-पतिभाशाली आचार्य होचुके उन्होंने सत्योपदेश प्रणालीका परित्याग नहीकिया अतएव कई सबल प्रतिपक्षी होतेभी श्वेताम्बर जैन धर्मका डंका आजतक अविच्छिन्न बजता चलाआया किन्तु सुमार ४०० वर्षोंके शनैः २ सत्योपदेश प्रणालीमें परिवर्त नहोना प्रारभ होगया, तीर्थंकर-गणधरोंके बाधे नियमोंका उल्लघन होनेलगा, श्रोतावर्ग सत्यो उपदेशके अभावके कारण नियमोंको तोडने लगे, जैनाचार्योंका प्रभाव जैन समाज परसे शनैः २ घटने

जगा, श्रोतावर्ग जिन आचार्योंकी आज्ञाका भंग करना पाप समझ
तेथे वह ठीक उल्टा होलगा, उपदेशकवर्ग श्रोताओंकी मरजीके
विरुद्ध वर्तना व उपदेश करनेमें भय करने लगे, कुछ और
शब्दोंमें कहें तो श्रोताओंके आधीन वक्ता होगये, श्रोताओंकी
आज्ञामें चलनाही श्रेय समझ बैठे-तीर्थंकरोंकी आज्ञाकी ओर
दुर्लक्षकर केवल श्रोताओंका मन खुश रखना (चाहे कुछ क्योंनहो)
ही परमधर्म मानलिया, " धम्मोपदेशो जनरञ्जनाय " इस रत्नाकर
सूरिकी उक्तिके अनुसार लोक रञ्जनार्थही उपदेश करने लगगये
भलॉफिर उनके उपदेशका प्रभाव कैसे श्रोतावर्ग पर पड सकताहै ?
अर्थात् नही पडसकता । वर्तमानमेंभी उपदेष्टाओंकी ठीक यही दशा
है कि जो मैं पीछे लिखचुकाहूं । यदि ऐसा नहीं है तो प्रस्तुतमें
श्रोतावर्ग (श्रावकवर्ग) वक्ताओंकी अवज्ञा करोमें क्यों कटीबद्धि
होजाया करता है ? छोट मोटे शहर गामोंकी तो कथाही क्याहै
जहापर हजारों जैन श्रावकोंके घरकी संख्याएँ है और वहापर एक
नएक विद्वान उपदेशक मुनि हमेशा रहतेही हैं ऐसे बडे २ शहरोमें
श्रावकवर्ग उपदेशके समय वा अन्यसमयमें गुरुवचनाको अल्पभी
किमत नही देते गुरुवचनका उल्लघन करनेमें कुछ पापही नही सम-
झते अर्थात् नही तो वे बरोबर व्याख्यानके नियमोंका पालन करते
और न उनके वचनोंपर चाहिये वैसा लक्ष देते इसलिये हम कहस-
कते है कि बहुधा प्रस्तुतके उपदेशक याति मुनि लोक रञ्जनार्थही
उपदेश करते है । यदि जैनोपदेशकों को अन्तरङ्गमें जिनेन्द्रोंके
वचनोंपर प्रेम-भक्ति होती क्या वह उपदेशक सत्य उपदेश प्रणाली
के नियमोंका उल्लघन होनेदेव ? कभीनहीँ । हमारे कथनोकी सत्यता
केलिये उक्त प्रमाण बसहै ।

प्रस्तुतके आचार्य, उपाध्याय-यति-मुनि प्रभृति उपदेशकोंने यह विचार करना अत्यावश्यक हैकि,-हमारा कर्त्तव्य क्याहै ? हमने सरपर महत्व कार्य कौनसा लियाहुआ है ? हमको सबसे प्रथम क्या कर्म करनेकी जरूरत है ? हमारे कार्योंमें विघ्न क्यों आते हैं ? उपदेष्टा वर्ग विपद् क्यों उठारहाहै ? हमने हमारेपर लिया हुआ कार्य बरोबर करते है या नही ? इन प्रश्नोंका विचार यदि वे दीर्घदृष्टिद्वारा करेंगें तो उन्हें यह समझे विना कभी नहीं रहेगा कि, हम हमारा कार्य बरोबर नहीं करसकते । उपदेश द्वारा संसारके जीवोंको दुष्ट कृत्योंसे बचाकर-सन्मार्गपर लाना और हमने सन्मार्गपर चलना यही हमारा परम कर्तव्य है, यही हमने महत्वकार्य सरपर लियाहै, यही हमें सब कार्योंसे प्रथम करना परम आवश्यकहै । यही हमारे लिये श्रेयस्कर है यह उन्हें स्पष्ट समझ जायगा । यदि कोई यहां पर कहैकि,-वे समझतेतो हैं तो हमें यह कहनाही होगा कि-यदि वे समझते है तो बडे २ नाम धारी यति-मुनि-विद्वान्-उपाधि धारक, क्रियापात्र कहलाने वाले होकरभी वे इस कर्त्तव्यका पूर्णरीत्या पालन क्यों नहीं करसकते ? जिस धर्ममें निस्पृही धर्मोपदेशकोंकी गणनाका अभावसाहुआ, व लोक देखाउ क्रिया करने वालोंका बलवढा कि मान लेना चाहिये कि-इसधर्मका ह्रास हुवे बिना कभी नहीं रहेगा और जिस धर्ममें विद्वान्-ज्ञानी सत्योपदेशकोंका पक्ष सबल होगा जिसमें उपदेशकोंकी कदरहोगी तो मान लेना चाहिये यह धर्मका उत्तरोत्तर अभ्युदय हुवेबिना कभी नहीं रहेगा फिरचाहे उस धर्मके सिद्धांत कैसेही क्योंनहो परन्तु विद्याका प्रभावही ऐसाहैकि जिस मतमें विद्याने पदार्पण किया कि उसमतके बढनेके दिन नजदिक आये । जैन धर्म सरीखे प्राचीन व सत्य धर्मकी सृष्टि (प्रजा) का भारतमे क्रमशः घटना व आर्यसमाज सरीखे नूतन मनः कल्पित

मतका मताहरूप बढना यहीबात हमारे वचनोंकी सत्यता बतलारही है। आर्यसमाजमें विद्यावृद्धिके लिये अपरिमित परिश्रम अनुभव करते हैं, विद्वानोंकी आर्य समाजमें बडीभारी कदर है। किसीभी मतका विद्वान क्यों नहो वे अवश्य उनका आदर करते हैं, मिलते हैं, बातचीत करते हैं। इसीसे समाजमें अशिक्षितवर्ग प्रायः बहुत कमहै। हमें अनेक समाजीयोंसे परिचयहै उक्तसमाजने विद्याके अवलम्बनसेही अपनी उन्नति की है। आर्यसमाजमें उचकोटीके विद्वान दृष्टिगत होते हैं यह विद्यानुराग काही फल है। जिन्होंने कांगडी गुरुकुल, लाहोर ऍंग्लो वैदिक कॉलेज-प्रभृति विद्या वृद्धिकी सस्थाएँ अपने नजरोंसे देखी है वे हमारे इस कथनोंको सर्वथा सत्य समझ सक्ते हैं। जैनीयोंकी आज एकभी ऐसी विद्या वृद्धिकी सस्था नहीं है जो आर्य समाजकी सस्थायोंसे स्पर्धा करनेमें भाग्यशाली बने। हा, यद्यापि काशीकी यशोविजयजी पाठशाला कई कष्टोंको सहन करने परभी आज पर्यन्त टीक रही है और चालक भी महात्मा श्री विजय धर्मसूरिजी तथा इन्द्रविजयजी सरीखे उचकोटीके विद्वान हैं किन्तु जैसी चाहिये वैसी महानुभूति जैनीयोंकी नहोने के कारण-कार्यकर्ता-चाहिये वैसा कार्य नहीं करसक्ती। सुनते हैं कलकत्तेके जौहोरीयोंसे जो वार्षिक चदा काशी पाठशालाको जाताथा उनमेंसे कइ जहोरीयोंने अन्य मुनियोंके कहनेमें लाग कर वह चदा देनाभी बधकर दिया है यदि यहवात सत्यहो तो बधकरवाने वाले मुनियोंका यह कार्य अश्लाघनीय व घृणीतही मानना होगा। और यह त्रुटी जैनमें है इसका उपाय करनाही जैनी मात्रका परम कर्तव्य है। मस्तुतमें जितने श्रोता-वक्ताहै वे प्राय' सभी देखाउ बाह्य क्रियाका पक्ष लेकर बैठेहुवे है, जो लोग केवल क्रिया कोही सार्थक समझते हैं, क्रिया परही मोहित हो बैठे है वे मानो राजासे प्रेमत्याग राजकी दासी

परही मोहीत होगये है उन्हें उचित है कि राजासे प्रेम करनेका प्रयत्न करें, राजाके साथ प्रेम होजानेपर एकतो क्या अनेक दासीएँ उनके वशीभूत होसकती है अर्थात् ज्ञानरूप राजासे प्रेम रखने वालों के शुद्ध क्रियारूपिदासी तावेदार बनजाती है। जैनशास्त्रोंमें जो यह महावाक्य कहा हैकि, "ज्ञानस्य फलं विरति" अर्थात् ज्ञानका फल विरति पनाहै वैसेही ज्ञान रहित जो विरति (क्रिया) पनहै वह इस सूत्रसे निकम्मा स्वतः होचुका। ज्ञानसे जीव सम्यक् द्रष्टा होजाता है सम्यक् द्रष्टा होजानेपर सम्यक् ज्ञानानुसार शुद्धक्रिया उससे स्वतएव होने लग जाती है—देखाउ (बाह्य) क्रियाका सर्वथा अभाव होजाता है। तात्पर्य ज्ञानानुसारही जो क्रियाहै वही शुद्ध क्रियाहै इससे यह सिद्ध होचुका कि—जैन उपदेशकोंनें सम्यक् ज्ञान सम्पादन करनेका प्रयत्न करना व उपदेश द्वारा जैन समाजको बोधप्राप्ति करवाना, और देखाउ बाह्यक्रियाके मोहमें न फसना, यही श्रेयस्कर है। जैनके यति—मुनि इस कार्यको करनेमें बहुतही पीछे रहेहुवेह। उन्हें अबभी पांव आगु फैलानेकी जरूरत है। इस स्थानपर यदि कोइ यह विचार करेकि इस ग्रंथका लेखक यति होनेके कारण क्रियाके विरुद्धमें लिखा होगा तो यह—उनकी भूलहै इस ग्रंथका लेखक ज्ञानानुसार शुद्ध क्रियाका बराबर पक्षकारहै किन्तु दिखाउ—आडम्बरी क्रिया लेखकको स्वप्नेमेंभी पसंद नहींहै।

हमारे शासन नायक श्रीमान् महावीर स्वामीका नाम कौननही जानता? उन्होंने महान् वीरताका परिचय दियाहै—उन्होंने कष्ट सहनकरकेभी—संसारको—दुःखोंसे बचाया—उनके पुत्र कहलानें वालोंको उचित है कि कुछ कष्ट सहन करनाभी पडेतो—उस कष्टोंसे न डरकर—वीरके वाक्यका प्रचार संसारमें बढानेका प्रयत्नकरें, जभी वीरपुत्र होसकतेहैं। निन्दाके भयसे, सुखके वशीभूत होकर जो उप

देशक सत्योपदेश करनेमे न्यूनता करते हैं वे दिखाउ (नकली) वीर पुत्र है।

यह वात प्रस्तुतके सभी जैनवक्ताओंके अनुभव गतहैकि,-श्रोतावर्गकी ओरसे-व्याख्याताके वचनोंका जैसा अनादर-जैसा दुर्लक्ष होताहै वैसा अनादर-किसी क़दर शत्रुके वचनोंकाभी नहोता होगा जहांपर जिनेन्द्रकी वाणीका उच्चार हो रहाहै वहांपर श्रोता (श्रावक) वर्गको यहवात उचितहैकि सभी अन्यकार्योंका त्याग एकाग्रतापूर्वक विनययुक्त (अदबके साथ) श्रवण-मनन करें। इसके बदले ठीक उल्टा करते हैं। बालबच्चोंको साथ लातेहैं, बालकोंको खेलाते,-प्यार करते-जब बालक रोनेलगे तो उसका प्रेमपूर्वक रोनाबंध करनेका प्रयत्न करते, स्त्रीवर्ग परस्पर बातें खुले दिलसे करती तोभी उन्हें कोई मनानहीं करता कोईएक श्रोता बीचमेंसे उठके जाताहै कोई सबके आगे आकर बेठताहै इत्यादि अन्धाधुधी चलातेहैं इसे व्याख्यानकी दुर्दशा-अनादर-दुर्लक्ष न कहें तो क्या कहें? नाटक सरीखे लोकरञ्जन सभाओंमेंभी नाटका यक्षके नियमके विरुद्ध वर्ताव करनेवालोंको धक्के देकर बेअदबीके साथ बहार निकाल दिये जाते हैं। लोकोंको खुशकरनेमेंही जिन्हें धन मिलताहै। ऐसे स्थानोंमेंभी नियम विरुद्ध कार्य नहीं होसकता। और जो परमार्थिक, आत्माको पवित्र करनेकी सभाहै, जिनके उपदेशसे ससारकी उन्नति और परभवमें मोक्ष प्राप्ति होती है, वहांपर परिहितचितकही नियमोंका पालन श्रोताओंसे नही करना क्या यह अन्याय नही है? धर्मोपदेशक वहांपर उस सभाका अध्यक्ष है क्या उसको श्रोताओंमें नियमोंका पालन करानेका अधिकार नही है? बराबरहै। नियमोंके प्रतिकूल चलने वालेको सभासे बहार करदेनेका अधिकार अध्यक्षको कदीमी मिलाहुआहै। जो उपदेशक अपने वक्तव्यमें बाधा डाल

नेवालोंको या नियमोका उल्लंघन करनेवालेंको अथवा अन्धाधुंधी चला नेवालोंको सभासे बहार नही करते और मुलाहीजा करतेहैं वे अवश्य उपदेष्टा पदके लायकही नही होसकते। ऐसोंको उपदेश करनेका अधिकारही नही हैं। श्रोताओंके आधीन रहनेवाले व खुशामदीये सत्यपर कुल्हाडी मारनेवाले तीर्थकर गणधरोंके गुन्हेगार हे। हमने बी. ए. एम्. ए. प्रभृति डिग्री प्राप्त प्रभावशाली पुरुषोंके कईवार व्याख्यान सुने है, जिनका व्याख्यान सुननेको पाच दश हजार मनुष्य संख्यासे कम गणना न होगी ऐसी विशाल सभायोंमेंभी मजाल नही कि,-एक छोटासा बचाभी चूतकतो करले, हमने हमारे दृष्टिसे देखा है कि-असह्य लघु शंका होतेभी-दबाकर कई लोक बेठे रहे है, इसका नाम व्याख्यान सभा इसका नाम उपदेश ऐसोंको सचे वक्ता कहसकते है। यदि ऐसे अप्रतिम विद्वान वक्ता-जैन धर्मका उपदेश करनेमें कटीबद्ध हो जावतो जैन धर्मकी उन्नति होनेमें कुछ देरही न लगे। खेद है कि-हमारे जैनमें स्वार्थ त्यागी, निस्पृही, कियापात्र कहलानेवाले महात्माओंके व्याख्यानोंमेंभी यह उच्चकोटी नही दीखपडती! इसका सबल कारण यही मानना होगाकि, उपदेष्टाओंकी कमजोरी! वक्तृत्व गुणमें इतनी न्यूनता! उन्हें श्रोताओंके दिलपर अपना कबजा जमाना याद नही। या स्वार्थके वशीभूत हुवे हुए खुशामदिके सिवा कुछ नही कहसकते इत्यादि कारणोंके विना अन्य कारण होही नही सकते। जैनोंकी व्याख्यान सभाओंमें श्रोतावर्गकी ओरसे जैन सिद्धान्तानुकूल नियमोंसे विपरीत होना व अध्यक्ष (वक्ता) ने चुप बेठे तमासेकी तोर देखना, क्या यह दुःखकी बात नहीं है? अनुचित वर्ताव करनेवालोंकीहाँ, में, हाँ मिलानेवाले वक्ताको क्या हम अध्यक्ष कहसकते है? ऐसे जैनोपदेशकोंको नीरसभूके अनुयायी मानना याने सर्पविषको अमृतके समान मानना है॥

२

जैनके यति-मुनियोंने गृहस्थ धर्मका त्यागकर अनगार धर्म ग्रहण किया है और फिर पीछे-संसारीयोंके माया जालमें फसते हैं यह सखेदाश्चर्य है। कुमार्थाएँ (लोकरूढी) में फसेहुए गृहस्थीयोंके हां, में, हां, मिलाना-उनके वचनानुसार चलना यह बात क्या अनगार धर्मको कलंकीत नहीं करती? हमें यह ठीक मालूम है कि-आजकलके श्रावक, यति-मुनियोंको नगर प्रवेश करनेके अनन्तर तुरतही अपनी कुप्रथायोंकी प्रारम्भिक शिक्षा देना आरंभ करदेते हैं "महाराजश्री! आप इस शहरमें नये पधारे हैं इससे गामकी रीतें (रसमें) आपसे निवेदन करदेना हमें जरूर है। आप यहांपर अमुक २ बातोंका प्रबंध करवाना चाहोगे तो अमुक २ श्रावकोंको खुश रखना होगा? अमुक श्रावकका मान आपको रखनाही होगा! अमुक २ फिरकानके लोक यहांपर बहुतहैं इसलिये उक्त फिरकेके संबंधमें कुछ चर्चा, करोगे तो आपका निभाव होना दुस्वार है। हमलोक अमुक फिरकेके साथ जातीय बंधनके वश संबंध कुछनाइ नहीं सकते। आप आज यहांपरहै कल चले जाओगे हमारा इनसे हमेशाहका, कामरहा हम इन्हें कैसे छोड़ सकते हैं इनबातोंसे आपको प्रथमही वाकेफ करदिये हैं, इत्यादि २ सुनकर संसारियाके पक्षमें फसेहुए यति-मुनि यही उत्तरदते हैं कि -" श्रावकजी! हमें क्या यहांपर जन्म निकालना है, थोडेदिन रहकर हम किसी फिरकेके संबंधमें क्यों जिक्रकरेंगें, थाडे दिनोंकेलिये क्या राग द्वेष करेंगे? हमको तो जैसा तुम कहोगे वैसी रीतिसेहम चलालेंगे आपलोगाके साथ बुरा बर्तावकरके हमें क्या करनाहै! जिसबातमें तुमलोक खुश उसमें हम लोक खुशहै," इत्यादि उनके हां में हां मिलाने वाले यति-मुनि-मिलजाते तो उनकी वे बडीभारी कीर्ति करने लगजाते हैं, और यहांतक प्रशंसा करते हैं ऐसे समाधान-शान्तमूर्ति-सबके साथ हिल-

मिल चलनेवाले यति-मुनि-महाराज हमने कहीं नही देखें ? जो मुनि तीर्थंकरोंकी आज्ञाका ओर दुर्लक्षकर-उनके कथनोंमें चले वह अच्छा और जो यति-मुनि ससारीयोंके वचनोका अनादरकर तीर्थंकरोंके वचनोंका आदर करे, सत्योपदेशकें वह बुरा ! जहापर यह न्याय वहिये ! अब जैनोन्नति कैसेहो ? जैन उपदेशकोंके परतन्त्रता भरे वाक्य सुनकर सत्यदर्शियोंको क्या लज्जा आये विना रहसकी है ? ऐसे उपदेशक वीरपुत्र कहलानेमें क्यों नहीं सरमाते ? जिन धर्मोपदेशक गुरुओंकी आज्ञाका पालन श्रोता (श्रावक) वर्ग बरावर करताथा उन श्रोताओंकी आज्ञाका पालन स्वार्थ वश गुरुलोक करने लगगये फिर ऐसे उपदेशकोंकी वाणीकी असर श्रोतावर्गपर कैसे हो सकती है ? कइ उपदेशक सुखाभीलाशी हो जानेसे, कइ कीर्तिके भुखे होनेसे-धर्मकार्यमें क्रमशः कुमथायोंका मिश्रण भी होजानेपर लक्षनही किया अन्तमें कुप्रथायों (कुरीतियो) ने पूर्ण ताबा करलिया तबभी उपदेष्टा वर्गकी आँखें नही खुलती। जिन्होंको ऐहिक सुख प्यारा नहो जिस धर्मकी दीक्षा ग्रहणकी तिस धर्मकी शिक्षा का पालन करनाही अपना परम कर्तव्य समझा हो उनको ससारीयोंकी हा में, हा, मिलानेकी क्या गरज ! और क्यों श्रोताओंकी आधीनता स्वीकारेंगे ? किन्तु ऐसे विचार वाले वक्ता गुरु अब बहुत कम रह गये, और कई विद्वानहैं तो भी कालके प्रभावसें शिथिल होपडेहैं। यदि कोई सत्यदर्शी उन्हें कहेभी तो वे यही उत्तर देते हैं कि:-"पञ्चम कालहै, क्याकरें विना स्वामीकी फौजके माफिक कोई किसीकी नही सुनता, हम अकेले क्याकरें ? इस समय समता रखनाही अच्छाहै ! समयप्रतिकूल है शांतिविजयजी श्रावकोंके विचारोसे मथक् विचार रखते हैं व्याख्यान सभामें सख्ती रखते तो देखो उन्होंसे बहोतसे श्रावक नफरत करते हैं ? इससे शान्त रहनाही अच्छाहै"। इत्यादि वाक्यों

द्वारा अपनी कायरताका परिचय देते हैं किन्तु वे इस बात और पर नहीं देते कि–श्रीमान् शान्तिविजयजी सम्प्रदायोंकी गुत्थाओंसे मिश्रित धर्मविचारोंमें शामील नहीं होते और अनेक देश देशान्तरोंमें फिरकर धर्मका डंका बजारहेहैं। माननेवाले तो उन्हें मानतेहीहैं। और तुम हजार समझाका जाता धारण करलोतोभी जो माननेवाले होंगे वही मानेंगे। फिर सर्वोपदेशका स्थानपर हां में हां मिलानेमें क्या लाभ प्राप्त हुआ? इससे तो उक्त मुनिजीकी मोटी समता धारीयोंमें उंची होगई इस मनिमृत वाक्यमें वे जो सम्न शब्दों को काममें लातेहैं किन्तु परोपकार बुद्धिसे लातेहैं किन्तु उनका हृदय द्राक्षके रससेभी अधिक मधुर है। कई सत्पुरुषोंमें यहभी कांगी पाई जातीहै–जैसो!

" उपरि करवाल धारकाराः क्रूरा भुजगमपुङ्गवाः
अन्तः साक्षाद्द्राक्षादीक्षा गुरवो जयन्ति केऽपिजनाः "

अर्थ–कोई कोई सत्पुरुष उपरसे तो सर्प समान क्रूर और खड्गकी धाराके समान तीक्ष्ण दिखाई देतेहैं परन्तु अन्तःकरणमें परमोत्तम द्राक्षाके तुल्य मीठा उपदेश देनेमें समर्थ होते हैं।

कविवर जगन्नाथरायकी इस उक्ति अनुसार–उक्त मुनिजीका उपदेश दृढ श्रद्धावानोंके लिये यथार्थही अमृत (मीठा) है

और शास्त्रोंकी आज्ञाभी है कि मुनि " जवानी ताडना करे " और इस आज्ञाका उक्त मुनिजी बराबर पालन करते हैं किरातार्जुनिय काव्यमें एक स्थानपर लिखा हुआहै कि–

"अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः "
"अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषा दरः "

तात्पर्यार्थ–जिनका कोप बांधा नही जाताहो ऐसा अवन्ध्य

कोपवान् पुरुषकी आपदा चलीजाती है, अन्य पुरुष जिसके स्वयमेव वशी होजाते हैं और जो पुरुष अमर्ष शून्य है अर्थात् कोपहीन है उसका स्नेहीयोंमे भी आदर नहीं होता और शत्रुभी उसका भय नहीं करते। इस प्रमाणसे एकान्त अमर्षताका त्याग करनाभी अयुक्त है। भयकेविना प्रीत नहीं रहती इससे पूज्योंका भय पूजकों को कुछ न कुछ अवश्य चाहिये। अतएव सिद्ध हुआ कि-धर्मपथका लोप होताहो तो क्रोधकरनाभी पापनहीं है। विद्वान् जैन वक्ताओंने इस ओर लक्ष पहुचाना चाहिये। आजकल एकबात यह अनोखी होरही है कि-जैन-वक्ताओंमें नकली वक्ताओंकी भरमार होपडी है। जिनको-सधी-विग्रह-पद पदार्थोंका यत्किञ्चितभी ज्ञान नहीं है ऐसे उपदेशक गणधर रचित सिद्धान्तोंको सभामें बाचनेके लिये बेठतेहै फिरश्रोतावर्ग क्योंनहीं अपना अधिकार जमावे? इसके लिये अवश्य बदोबस्त होना चाहिये शास्त्रोका कहनाहै कि:-"विद्या हीनं गुरुन्त्यजेत्" विद्याहीन गुरुको शिष्यने त्याग करना उचित है। श्रावक वर्गकोभी उचित है विद्याहीन गुरुके पास उपदेश न सुनें। अमुक २ ग्रंथोंको पढजानेपर व्याख्यान सभामें बेठके करसकता है। ऐसा बदोबस्त होतो फिरभी कुछ उपदेशकी असर श्रोता वर्गपर पडे। विद्वान उपदेशक-सत्य उपदेश करनेमें किसीकी परवाह न करें और थोडे पढे लिखे हुए-उपदेशक विद्या सम्पादनका प्रयत्न करें, और पूर्ण वक्तृत्व कला आजाने पर उपदेश करना प्रारंभ करेंतो सभीबातें ठीकहो सकतीहैं। कहाहै:-यथा तानं विना रागो यथा मानं विनानृपः यथादान विना हस्ती तथा ज्ञानं

१ जैसे ज्ञानके विना राग मान आदरके विना राजा और मदो दकके विना हाथी शोभा नहीं पाता वैसेही ज्ञानके विना यति शुशोभित नहीं होता।

विनायतिः ॥ ज्ञानके विना यति सुशोभाको नहीं प्राप्त हो सक
अत: ज्ञान प्राप्त करना अवश्य है ।

विचार पूर्वक देखाजायतो श्रावक वर्गकी गणना धनवान्
करनी चाहिये और यति-साधुओंकी गणना विद्वान एव ज्ञ
धिकारी वर्गमे करनी चाहिये लक्ष्मी और सरस्वती, इन दो
मिलकर समाजका मन आकर्षणकर रक्खा हुआ है । सपत्ति,
ओहोदा, मान सन्मान, हुकमत प्रभृति मार्गद्वारा लक्ष्मीका अधि
समाजपर जमता है और विद्वता पूर्ण ग्रथ, प्रतिभा सम्पन्न
प्रगल्भ नीतिमय उपदेश ईत्यादि मार्ग द्वारा सरस्वतीका अधि
जन समाजपर जमताहै । विद्वताद्वारा, प्रतिभाद्वारा, उपदेश द्व
मनुष्योंकी चित्त वृत्तिका आकर्षण करनेवाले लेखक या उपदे
लक्ष्मीकी आज्ञासे निर्माण नहीं होसकते सरस्वतीकी कृपासे नि
हुआ हुवा निस्पृही विद्वान वर्ग श्रीमान्-धनी पुरुषोंका दा
का स्वीकार किसी हालतमेंभी नहीं करसकता और न
बुद्धि रखकर जन समाजका अकल्याण करनेका प्रयत्न करसक
हम यह दृढता पूर्वक कहसकते हैं कि जहातक स्वार्थ वृत्तिका
हृदयमेंसे नहीं निकला फिरचाहे यतिहो मुनिहो चाहे कोईहो
तक सम्यक् ज्ञानाधिकारी नहीं होसक्ता । जैन समाजमें अनेक
मुनि-पंडित एव विद्वान होतेभी-अन्यान्य समाजोंपर तो प्रभाव
लना दूरही रहा किन्तु-जैनी श्रावक समाजपरभी अपना प्रभा
डाल सकते इसका मुख्य कारण स्वार्थ वृत्तिहै । दूर जानेकी
बात नहीं है संविज्ञवर्य श्रीमान आत्मारामजी (आनन्द विजय
महाराजने स्वार्थ वृत्तिका त्याग कियाथा इससे वे ससार पर
उपकार करसके । उनका नाम ससारम कौन नहीं जानता
त्या. श्रीमान् शान्तिविजयजीके प्रतिभा सम्पादक लेखोंसे कौन

रिचितहै ? उनका निस्पृहता पूर्वक सत्योपदेश–किससे छीपाहुआ है ? जैन समाजमें प्राय: ऐसे, सत्योपदेश करनें वालोंकी बहुत त्रुटी है । श्रोता (श्रावक) वर्गमें धर्मकी शिथिलता एव दुर्बलता–और मिथ्याभिमानकी वृद्धि होनेका कारण सत्योपदेशक वक्ताओंका अभावही कहना होगा । हमारे यति मुनि निस्पृही जैनदीक्षा स्वीकार कर–स्वार्थ वृत्ति, और कीर्तिके आकांक्षी होजानेके वश सनातनसे अबाधित–अविच्छिन्न चलीहुई उपदेश प्रणालीको छोडकर ससारीयोंकी कुप्रथायों (बदरस्में) को मान सन्मान देरहे है इसे स्वार्थ वृत्ति न कहे तो और क्या कहे ? हमारी समझसे अनेक जैन विद्वान इस बातको अक्षरस सत्य समझतेभी होंगें किन्तु इस दुर्घट प्रसगमें श्रावग वर्गमे बुराइ कौनकरे ? यहबात वही करसकते है जिनोंने स्वार्थ वृत्तिका कुछ त्याग कियाहुआ होता है । श्रावकोंकी बदनामीके भय से कई समता धारीका बिरुद् धारकर बेठे हे । कई पञ्चम कालकी महीमाके ओटमें अपना काम चलाते हं कई कुछ और कइ कुछ बहाना करे स्वस्त बेठेहुवे ह । जैन धर्मकी बडी हानी होती देख वीरपरमात्माके पुत्र कहलानें वालोंको धर्म वीरता क्यों नहीं आती? व्याख्यान सभाके सबधमें ऐसे नियम बाधदने चाहिये कि–थोडा या बहुत सभी उपदेशकोंकी वाणीका ससारपर असर हो और व्याख्यान समयमे अनवस्था होनें न पावे ।

सच्चा आत्मसाधन वही हो सकता हैं कि जिसमार्ग द्वारा सत्य धर्मकी वृद्धि और अधर्मकी हानीहो । वहमार्ग कोई होतो सत्य उपदेशही होसकताहै । मनुष्य सत्योपदेश सुनकर–आत्मसाधन व परोपकारकी शिक्षा प्राप्त करसकता है । तीर्थंकरोंकी आज्ञाहै कि:–जैनधर्म्मोपदेशकोंने उपदेश करते किसीकीभी परवाह नही करनी चाहिये । यदि किसी उपदेशकका प्रभाव समाजपर सहसा नभी गीरेतो

इससे निरुत्साह-हताश होकर-कार्यको त्यागदेना नही चाहिये। आलस्य, प्रमाद, वाहवाहकी परवाह त्यागदो एसा सत्योपदेशकोंके कहते रहनेपरभी सुखाभीलाषी स्वार्थवृत्ति वाले उपदेशक वर्गको यहबात नही रूचती । वे सत्योपदेश करनेमेंभी मोकादेखते है। जिसबातको कहनेमें श्रावकोंका मन खुश रहे उनमें यदि दुर्गणहो और कभी अविनय-अवज्ञाभी करे तो भी-उन्हे न कहकर उनकी इच्छानुसार चलनाही स्वीकार बेठे है। और कोई उपदेशक थोडा वहुत वे परवाहसे काम चलाना चहावेतो उन्हे वे यही बोध करतेंहै कि " इस समय मोका नहीं है, जमाना बल्लाहुआहै ऐसी बेपरवाही रखना अच्छा नही " ईत्यादि वाक्य कह कर अपनेमें शामिल करना चहाते है। इधर श्रीमान् महावीर स्वामिका यह उपदेश है कि-जैनोपदेशकोंने निर्भय होकर निस्पृहता व श्रद्धा पूर्वक कार्य करते रहना यदि कोई अभव्य वहुल ससारी जीव नभी माने तो कोई हर्जनही किन्तु सत्योपदेश करते रहना, ससारीयोंकी खुशामद नही करना यहबात हमारे स्वार्थवृत्ति वाले उपदेशको को नही रूचती स्वार्थि-व्याख्याता इसे हठसमझते है-उन्हें-जिसकार्य करनेमें सुखहीहो तिलमात्रभी जिसमे परीश्रम न उठाना पडे, क्षणमात्रभी बुद्धिको जिसमें खर्च करना न पडे, दु:खका नामभी जिसमे सुननेमें न आवे ऐसा कार्य करनेमें वे खुशहै । जैन दीक्षा परिश्रमके लिये नहीं किन्तु सुखकेलिये लीहै तकलीफ उठाना उन्हें बिल्कुल पसद नही, द्रव्य क्षेत्र-काल भावका सहारा लेकर निरुद्यमी बनगये है। यद्यपि-तीर्थंकरोंनेंभी द्रव्य-क्षेत्र काल भावको देख वर्तना कहा तथापि यह-नही समझ लेना चाहिये कि-जैसा मोका देखा वैसा उपदेश करदिया याने अन्यायी-अधमायोंके सन्मुख अधर्मका उपदेश और धर्मीमिले तो धर्मका उपदेश-क्या! इसे उपदेश कह सकते है, । तीर्थंकरोंनें

विरुद्ध–देशाचार–रुढी–रसम–रीतोंको आप स्वीकार न करों आप उनके सामिल मतबनो, कई मुनि–धर्म विरुद्धभी देशाचार आदिदेख मौन धारण करलेते हैं और मनमें यह समझते है कि, हम इनसे क्यों बिगाडें ? हम मध्यस्थ क्योंन रहैं किन्तु शास्त्र कहताहै "नानिषिद्ध मनुमतम्" इससे वे उनके समान होचुके उन महात्माओंसें मेरा यह विनयहै कि–मौनावलम्बन न धारकर स्पष्ट कहदो कि यह धर्म विरुद्ध कार्य है यह धर्मस्थानोंमें न होगा ! मेरे प्यारे उपदेशको ! आप कुछ श्रम सहिष्णु बनो ! विशेष आपसे नभी बन सके तो उपदेशके समय आपके सन्मुख कोई धर्म विरुद्ध देशाचार आदिकर वा कुछ अनुरोध करेतो उनके कथनोंका सर्वथा स्वीकार न करें आप उनकी धर्म विरुद्ध बातका खण्डन करदें प्रयत्न द्वारा तोडदें–आप उनमे इसमें सम्मत न होवें । जब–उपदेश्य वर्ग–श्रोता (श्रावक) वर्गके–देशाचार आदि धर्म विरुद्ध कुप्रथाओंका खण्डन करना एकमतसे प्रारम्भ करदेवेंगें और किसी उपदेशककी ओरसे कुछभी सहायता उन्हें न मिलेगी तब–कुप्रथाएँ–बध होनेमें कुछभी देरी नहीं लगेगी । दुराग्रहीसेभी दुराग्रही श्रोता होगें उन्हेंभी अन्तमें अपना हठ छोडनाही होगा यह हम खूब जानते हैं कि इस कार्य केलियें हम कई दिनोतक परिश्रम, दु ख–अपवाद सहन करनेकी आवश्यकता है । जहांतक यहबात उपदेशक वर्गको नहीं रुचती तहांतक इसका ऐकान्त दिग्विजय होजाना दुसाध्यहै । किन्तु रूचे कहांसें उपदेशक वर्गमेंही प्राय ऐसी मनुष्योंकी भरती विशेषहै ।कि जो इसबातको अच्छी तरहसे समझभी नहीं सकते और न समझनें का प्रयत्न करत । यदि कोई ज्ञाता पुरुष उन्हें समझाने जायतो बहुधा अपनी दुर्विदग्धता झलकाकर खडे रहते है । महावीर स्वामीके पुत्र कहलाने वाले यति–मुनि–जो ऐसे हैं वे टिकाउ नहीं टेखाउ

वीरपुत्रहैं उन्हे वीरपुत्र न कहकर-रोटीयोंके-पुत्र कहने चाहिये। और जो ज्ञाताहैं विद्वानहैं वे इसका कुछभी प्रयत्न करते मालुम नही होते। उनसें कोई विनय करतो उत्तर में यही निरुत्साही वाक्य कहदिया करते हैं कि,–" हम जैसा अवसर (मोका) देखते है वैसा कार्य करते है " तात्पर्य–" नवमन तेल मिले नही और राधा नाच करे नही " याने न उनके मनोनुकूल-अवसर आवे और न वे प्रयत्न शीलबने। ठीकतो है जब इतना कहदेनेसेही उनका छुटकारा होजाता है तो वे फिर परिश्रम क्यों करेगे ? अस्तु " श्रद्धा " और " अवसर " के बीचमें जितना अन्तर है उतना अन्तर हमारेमें व पूर्वाचार्योंके व्याख्यान करनेमें है। मस्तुतके–उपदेशक वर्गमें कई केवल क्रियाका तो कई केवल ज्ञानका तो कई काल के महात्मका तो कई किसी बातका तो कई किसीबातका एकान्त पक्ष लेकर बैठ गयहे कई क्रिया ज्ञान प्रभृति सद्कर्मोंको त्याग परिग्रहके मोह–मायामें पडकर अपनी सुध बुधभी भूलगये हे। कई क्रियाके वादमें लगकर न्यायादि आवश्यकीय कार्योंकी ओर उदासीनता दर्शारहेहे। कई विद्वताके गर्वमें फूलेभी नही समाते हैं। एकान्त पक्ष धारण करनेके कारणकलापवश हम उन्हें स्याद्वाद शैलीसे विरुद्ध कहदेतो अयोग्य न होगा। न हम देखाउ क्रियाके पक्षकार हे न देखाउ विद्वानोंके ओर न हम असत्योपदेशक परिग्रह धारीयोंके है। हमतो " सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः " इस सूत्रानुसार जिनका वर्तावहै उस पक्ष के–पक्ष पाति हैं। दो चार व्यक्तियोंका त्याग शेष क्रियापात्र कहलानेवालोंमें श्रद्धाके विषयमे प्रायः अन्तरसे मालुम होते हे। ज्ञानी व–परिग्रह धारकोंमेंभी अपवादमात्र दो चार व्यक्ति त्याग शेष–स्वार्थी प्रमादी आलसी, दृष्टि गत होतेहे जिनोंको पुरुषार्थ तो दाढु दिखापड़ता है।

अबहम यहांपर " श्रद्धा " और " अवसर " (याने-मौका अनुकूलता) में कितना अन्तर है व श्रद्धापूर्वक कार्य जो कियाजाता है वह कैसा साध्य होता है और-अवसरके भरुसे कार्यका कैसा विनाश होता है और यदि साध्य होनेभी कितनी कठीनता पडती है यह पाठकोंको दर्शाना चाहते है इसपर विचार करें।

जैन धर्मके उपदेशक जब सर्व विरति दीक्षा ग्रहण करते हैं उस समय वे अरिहंत-सिद्ध-साधु देवता गुरु और आत्माकी साक्षीसे यह प्रतीज्ञा करते है कि-यही मार्ग मुझे तारक है, इसीका अन्त तक पालन करना मेरा कर्तव्य है, । इस मार्गके विरुद्ध मार्गमें आजन्म पर्यन्त नही रहूंगा। एसी दृढ भावना अन्तरङ्गमें उत्पन्न होना-व उक्त प्रतिज्ञाका स्मरण हृदयमें अखिन्न रहनाकि मैने यह साधुमार्ग स्वीकार किया है वह मै निश्चय पूर्वक निभाउगा। उन कार्योंपर किसीभी कारण वश अप्रीति न होना व क्रमश उन कार्योंमें उत्तम प्रेमकी वृद्धि होना-उस प्रेमका परिपाक इसीका नाम " श्रद्धा " है इस परम पवित्र कार्य करनेमें दुर्लक्ष करनेसे मेरा श्रेय नही है,-ऐसा अविचल भाव (मन परिणाम) रहना इसीका नाम श्रद्धा है। यही श्रद्धाका स्वरुप है। श्रद्धाको कई अलग हठ ठहरानेका प्रयत्न करतेंहै किन्तु वास्तवमें श्रद्धा और हठमें बडाभारी अन्तर हैं। हठ-दुराग्रह को कहते हैं और सत्य कार्य करनेमें आग्रहका नाम श्रद्धा है। आर्य समाजके उत्पादक-दयानन्द सरस्वतीने अपने रचित सत्यार्थ प्रकाशमें जैनीयोंकी मानी हुई श्रद्धाको हठ ठहराकर जैनीयोंको हठी ठहरानेका प्रयत्न कियाहै परन्तु खेदहै कि एक फिरकेके उत्पादक होकर तात्पर्य समझे विनाही श्रद्धाको हठ कहते विचार नही किया, यह साक्षरोंके लिये बडीही लज्जाकी बात है, अबभी कोई मित्र सत्यार्थ प्रकाशमें इस भूलको सुधारकर छपवावे तो

स्वामिजी परका यह कलंक दूरकरनेका कार्य होगा। व जैनीभी उसे सत्पाक्षि समझ धन्यवाद देंगे। अस्तु,

श्रद्धा एक ऐसी वस्तुहै कि जिसका साथ करती है तिसको भव कूपसे निकाले विना कभी नही रहती व-इस लोकमेंभी उसका अभ्युदय हुवे विना नही रहता। इसीलिये तीर्थंकर-गणधर महा पुरुषोंने यह कहाहै कि-"श्रद्धा परमदुल्लहा" और अवसर-मोक्ष अनुकूलता क्रियाके लिये परम दुलर्भ नही कहा! मनुष्य जहांतक विचार युक्त सशक्त रहताहै तहातककी अनुकूलता कामदेती है, निद्राव-गेग गफलतीके समयपर वहकाम नही देसक्ती। और श्रद्धा-सदा-सर्वदा निरतर अपना काम करतीही रहाकरती है। श्रद्धा युक्त प्राणिका मरणभी हुआ तो वह पंडित मरण कहलाताहै मानो वह मरण नही महान् जीवन है। श्रद्धाके प्रतापसें परलोकमें स्वर्ग अ-पवर्गकी प्राप्ति होती है। अवसर मोक्ष अनुकूलता प्रभृतिमें यह शक्ति नहीं है। सन्मुख आयेहुवे अरिष्टकष्टदुःखको चुकादेना टालदेना केवल अनुकूलता जानती है किन्तु अरिष्टके साथ महावीर स्वामिवत् धैर्यता पूर्वक युद्धकर उसे पराजित करना वह नही जा नती। यह काम श्रद्धाही करसकती है। श्रद्धाके विरोधीयोंको नि-र्वाणपद प्राप्त नही होता कहा है "दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण" फिर ऐसा कौनहै कि ऐसी अनुपम वस्तुका त्यागकरें। जो मनुष्य सकटसे नही डरता उसका भयमात्रभी नही करता व अपनी प्रति-ज्ञाओंका बराबर पालन करता चलाजाताहै वही जैनेन्द्र देवका सच्चा श्रद्धावान उपदेशक है। श्रद्धावान् विरुद्ध परिस्थितिकोभी अपने कार्यकी सहायक मानताहै और दुःखको दुःख नही मानकर कार्य सि-द्धिमें सहायक मानताहै। श्रद्धावान् ऐसे समय पर यही समझताहै कि शारीरीक भोगावली पूर्व कृत कर्मयोगसे प्राप्त हुई विना भोगे

तो छुटही नही सकती यदि यह धार्मिक आपत्ति नही आतीतो फिरभी मेरे कार्यमें विलम्ब होनेका संभव था परतु अच्छा हुआ कि अब बहुत जल्दी हो जायगा । ऐसी जिसकी श्रद्धा है वही सच्चा श्रद्धालु जिनेन्द्र धर्मोपदेशक है । उदाहरण, जब आकोले शहरमें नि न्या. महाराजश्री शांतिविजयजीका प्रथम चो मासा हुआ उस समय यहाके लोक नाम मात्रके जैनीथे अभिमान अज्ञानता वश उनमेंसे कई दुराग्रहीयोंको महाराज श्रीका उपदेश कटुफलसा मालुम होताथा व उन्हाने उपदेशमें कई आप त्तिया लानेका प्रयत्न किया कई झगडे फैलिये कई प्रकारकी भली बुरी बातें करना आरभकी किन्तु सत्योपदेशके प्रभावसे वह वाता-वरण किधरही जातारहा सब लोक महाराजश्रीके चरणाकी शरणमें आगीरे व हर्षसे एक चोमासा फिर आकोलेवालोंने कराया-व-इस वर्षभी विनति कीथी परतु इन्दोरकी विनति होजानेसे इदोर कोप धार गये महाराजकी आज्ञानुसार सारा प्रबध करना आकोला सघने स्वीकार किया । महाराजश्रीके चरणोंके व उपदेशके प्रभावसे उन्ही श्रावगोने मदिर-उपाश्रय-धर्मशाला आदिकी व्यवस्था वडीही योग्य रक्खी है । आज सारे यहांके श्रावक एकयतासे काम कररहेहे । आकोला आज उन्नतिके शिखर पर पहुचाहुआहे यह सत्योपदेशका ही परिणाम हैं । श्रद्धावान् उपदेशक द्वारा सत्योपदेश सुननेसे-शुद्ध श्रद्धा दृढतरहोती है और तद्वारा सभी कार्य उत्तम होते है । इस लिये उन्नतिकी इच्छा करने वालोंनें शुद्ध श्रद्धा पूर्वक उपदेश श्रवण करनाही उचित है । श्रद्धासे-शुभाशय उत्पन्न होताहे । श्रद्धा एक विलक्षण शक्ति है । इस शक्तिद्वारा इस लौकीक व पारलौकीक स-पूर्ण कार्याकी सिद्धि होती है । अवसर-मोका-सौंय-अनुकूलता संकटको चुकदेनेका प्रयत्न अवश्य करती है । परतु-सामना कर

नेका यदि समय आजावेतो अनुकुलताको दासत्वही स्वीकारना होताहै। और दासत्व स्वीकारनेसे-सकट-व-अनुकूलताका अन्तमें एक्यता होजाना स्वाभाविक है। और एक्यता होजानेसे जिनका पक्ष अनुकुलताने लिया था वह प्रतिस्पर्धिकी दासी वनजानेसे स्वपक्षको त्यागनाही होता है। और विरुद्ध धर्मवालोंका साथ करनेसे जिसका पक्ष लियाथा-उसीकी शत्रु तुल्य होजानेसे परिणाममें-कार्य बिगाडने वाली होगई। अतएव अनुकूलताके-पक्षसे कार्यकी हानि है इसीका नाम ज्ञानियोंने भवभ्रमण कहाहै। जोमित्र होकर शत्रुकी सहायता करने लगजावे उसको मित्र मानना केवल मूर्ख पणा है। श्रद्धाका सुआग्रह तारने वाला है और अवसर (सोय अनुकूलता मोक्षा) का प्रेमभी परिणाममें डुवाने वाला है। आत्माके गुणोंसे मैत्रि सम्पादन करना तारक है व आत्माके विरूद्ध धर्मवाले पदार्थोंसे जीवात्माको मैत्री करना नाशकारक है। हरएक स्वार्थि-मनुष्य स्वार्थान्धता वश अनुकूलताकी सहायता लेते हैं परन्तु परिणाममें दुःखकर होनेसे पश्चातापही करना होता हैं। और श्रद्धाकी सहायता लेनेसे यद्यपि कुछ श्रमसहिष्णु बनना होताहै तथापि परिणाम सुखकर होनेसे लाभदायक है। इसलिये जैनधर्म्मोपदेशकोंने अनुकूलता-अवसर-मोक्षा प्रभृतिका प्रेम फासको तोड-शुद्ध श्रद्धाकी सहायता जोड जिनेन्द्रोंकी वाणीका प्रचार बढानेका मार्ग स्वीकारनाही परम कर्तव्य है और-यह मार्ग धारण करनाही श्रेय प्रद है। धर्म्मोपदेशक होकर धर्मकार्यमें कायरता दर्शाना वा समता धारी बनकर मौनधारणकर बैठना क्या इन लक्षणोंके धारक सच्चे श्रद्धावान होसकते है? सच्चा श्रद्धावान होकर धर्मविरुद्ध कार्योंका अटकानेका प्रयत्न न करे तो वह श्रद्धावानही कैसे होसका है ? हम आशा है कि पूज्य उपदेशक वर्ग हमारी इस विनतिपर अवश्य लक्ष देंगे

आकोला निवासी श्रीमान् पृथिवीराजजी मुहता श्रावगने हमसे अनुरोध कियाकि, " महाराज ! हम जातीय बधनादि अनेक कारण-कलापवश-परस्परमें कुछभी नही कहसकते यदि कहेंतो अज्ञान प्रभावसें बडी कष्टमय घटना होनेका सभव रहता हैं और आप निस्पृही-हैं आपके सत्योपदेशसे-या कुछ शिक्षाके वाक्य कहनेसे सहसा कोई बुरा नही मानता और न किसीका परस्पर विरोधहोता यदि बुरा मानेभीतो आपका क्या करसकता है ! सत्यवक्ता महात्माओंकी वाणीके प्रभावसे रतएव जन समाजकी अन्धाधुधी अटक-कर अनवस्था-दूर होजानेका सभव रहताहै यहहमें प्रत्यक्ष अनुभव है। यदि सभी उपदेशक इसी मार्गका अवलम्बन करना प्रारभ करदेवेतो क्याही अच्छाहो ! " महानुभावों ! देखिये, यह उक्त श्रावकका कहना कितना विचार युक्त हैं क्या जैनोपदेशक इस ओर लक्ष देंगें !

उपदेष्टावर्ग सभी उपदेशकोंकी सम्मतिद्वारा उपदेशकेलिये कुछ नियम बानदें तो बहुतही अच्छा हो । किन्तु वह नियम शास्त्र सम्मत होने चाहिये । और अनवस्था होतीहै वह अटकनी चाहिये । मैं मेरी बुद्धि अनुसार कुछ नियम पाठकोंके सामने रखता हूं उनपर लक्ष पहुचावे। आशा करताहू कि' मेरीओर अन्य उपदेशक महाशयभी नियमोंके समर्थमें अपने विचार प्रगट करगे । व मेरे दर्शाये नियमोमे यदि कुछ मतभेद मालूम होतो-उस्की सूचना अवश्य मुझे करेंगे । मैं अवश्य उसपर मेरे विचार प्रगट करूगा । अस्तु ॥

व्याख्यान सभाके-नियम !

१-व्याख्यान सभाका भवन स्वच्छ अलाहीदा होना चाहिये ।

(२) वर्ष भरम दोवार या एकवार रीपेरर होनी चाहिये ।

(ख) अधक्षके लिये सिंहासन (पाट) चंद्रवे-पुठीयास सुशोभीत रहना-व-उसके नजदीक ज्ञान स्थापना गुरु स्थापनाके लिये छोटे तीन पाटे रहने चाहिये।

(ग) इस भवनमें किसी यात्रीने अथवा स्थानिक किसीभी गृहस्थने रहना, खाना-पीना-सोना लेटना-भोजनकरना अथवा-शतरज चोपड वगेरा खेल-तमाशे हसी मस्करी-बीडी पान सुपारीवगेरा काम नही करना यानी शिवाय धर्म कार्यके कुछभी काम नही करना

(घ) एक नोकर सभा भवनके द्वार पर हमेशाह कायम रहना वह हमेशा भवन स्वच्छ रक्खे और पहरा करे।

(ङ) सभाके भवनमें-व्याख्यान सभाकी नियमावलीका छपा-हुआ तख्ता लगा रखना चाहिये जिससे हरेक व्यक्ति सभाके नियमोंसे फोरन वाकीफ होजावे।

२-दीक्षाधारी जैन सिद्धान्त व्याख्याता गुरु व्याकरण न्याय शास्त्र पढाहो, श्रद्धावान् आस्तिकहो उन्हींकोही धर्मोपदेश करनेका अधिकार है। और वही उस सभाके अधक्ष होसकते है किन्तु विनादीक्षावान्को अधक्ष होनेका अधिकार नहीं है।

(क) जैन शास्त्रानुसार जिनोंने दीक्षाली है (फिर चाहे वह संवेगी साधुहो-वा यतिजी महाराजहो उपदेष्टाओमें गणना इन्हीकी होसकती है व इनमेसे जो विद्वानहोगा वही अध्यक्षके स्थानपर बैठ सकता है।

(ख) दोसो चारसो वर्षके पेस्तर कई भ्रष्टाचारी जैनमुनि चारित्रसे पतित होकर गृहस्थि होगयेथे वह एक ज्ञाति होगई है। उनकी संतान मस्तुत मथेन ज्ञाति कहलाती है व

कई उनमसे ओसवालोंके पीढीयोंकी नामावली समीप रखकर-भाटोकी तरह-चार २ सुनानेसे कुल गुरु कहलाने लगे है-मगर वास्तवमे यह है तो-धर्मसे पतित-उन्हे जैनागम बांचनेका वा व्याख्यान करनेका अधिकार नही है। और न उनका सिंहासन पर बैठनेका या अध्यक्ष होनेका अधिकार है और न वे-जैनीयोंके धर्म गुरु हो सकते

(ग) यति मुनियोके अदीक्षित शिष्य-वा-श्रावक चाहे शास्त्र पढा क्योंनहो किन्तु अध्यक्षके (उच्च सिंहासन) स्थानपर बैठकर अथवा नीचे बैठकर-सूत्र-आगम बाचनेका अधिकार नही है। हा, उपरोक्त गुरूके अभावमें-अदीक्षित शिष्य वा श्रावक समान स्थानपर सारखा बैठ धर्मचर्चा कर सकते है। अनुवाद प्रकरण रास-चरित्र प्रभृति वाच सुना सकते है।

(घ) अध्यक्ष उपदेश करताहो उस समयपर-उनसे-कोई अधिक विद्वान-क्रियावान् चारित्रवान्-जैन दीक्षाधारी-यति मुनि-वहांपर वक्तृता सुननेको आजावे तो आसकता है किन्तु-अध्यक्षके बराबर या-समीप-या-उच्च सिंहासन खुर्सी वगेरा पर बैठनेका अधिकार उन्हे नहीं है। श्रोता वर्गके समीप-प्रथक् वस्त्र (आसन) बीछाकर बेशक बैठजावे। कई थाडे पडेभी मुनि विद्वान यतियोंके उपदेशभी-अभिमान वश नहीजाते यह केवल अल्पज्ञता है। उस समय उपदेशकको तीर्थकरोंकी वाणीका प्रचार जन समाजमें वृद्धि करनेका प्रयत्न करता है इसलिये यह सन्मान है। और व्याख्याताको उस समय नमस्कार कि

सीको करनेका अधिकार नही है।

३–श्रोता वर्गने व्याख्याता गुरुकी आज्ञाओंको बराबर पालन करनी चाहिये।

(क) यदि कोई सदस्य सभाके नियमोंका उल्लंघन अथा भंग करे वा असभ्यता करे तो उस व्यक्तिको समझ देनेका अध्यक्षको अधिकार है यदि वह इतनेपर न माने दुराग्रह करे तो–सभासे निकाल देना (बहीष्कृत करदेने) का अध्यक्षको इख्तीयार है।

४–व्याख्याता गुरु व्याख्यान करते है उस समय श्रोता वर्गने परस्पर बातें (गुपचुप) गुल्शोर नहीं करना

(क) व्याख्यान प्रारंभ हुयेबाद कोईभी श्रोता सभामें आवेतो उस समय अभिवादन गुरुको वंदना न करें। खमा समणं न देवें, न शिरामी न सांस–पूसे–सन्मानार्थ कुछभी शब्द उच्चार न करें फक्त दोना हाथोंको शिरोभागमें लगाकर (केवल वन्दन) मानसीक वंदना करे चुपचाप बैठ जावें।

(ख) वादविवादात्मक बातेंहो चाहे धार्मिकहो वा ससारीहो–व्याख्यान सभामें किसीभी प्रकारकी बातें नही करनी। वादविवादात्मक मुद्दाओंका निवेडा–विवादात्मक सभाओ (पंचायतीयों) में करें। यहां न करने पावें।

(ग) कई जगहमें प्रायः ऐसा यह रसमरवाज हुआ करती है कि व्याख्यानके बीचमें "म जानकार दुनियामें फदलाबु–द्धिवाला हुं। हासीयार समजे" आकांक्षासे अथवा मुर्खतासे अन्य श्रोताओंने झट यों कहदिया करते हैं कि "इस

शास्त्रमें अब यह (विषय) आनेवाला है। अथवा सहसा या कह कह देते है "महाराज! आप अमुक बात भूलगये" वा "इस स्थानपर यों नहीं या चाहिये" इसमें शास्त्रकी और वक्ताकी अवज्ञा एव मान भग होता है और अन्यान्य श्रोताओकी तल्लीनता भग होता है इसलिए एसा वर्ताव किसीभी श्रोताने नहीं करना चाहियें।

(घ) शास्त्र सुनते किसीको कुछ शका उत्पन्न होतो-उसवक्त प्रश्न न करने पावें। व्याख्यान पूराहुवे बाद वक्तासें पुछलेवें तो कोई हर्जनहीं। यदि श्रोताकी धारण शक्ति ऐसी नहोतो-नोटबुकमे पेन्सलसे नोट कर रक्खे।

८-श्रोताओंने व्याख्यान समाय बैठे-किसी गृहस्थको नमस्कार-सत्कार-स्वागत-जुहार-मुजरो आदि मुखद्वारा या शकेतद्वारा ईसारा वगेरा नहीं करना।

(क) ससारीक पूज्य माता-पिता-बडीबधु-सेठ-नगरसेठ-श्रीमान् धनवान्-स्थानिय वा देशान्तरीय कोई क्यों नहो, श्रोताने-नमन न करना अपने स्थानसे उनके लिये पीछे हटना वा-उनको अपने आगु बैठाना वा अपने स्थानपर बैठाना अथवा उठकर सामने जाना वगेरा मयत्न व्याख्यान समयपर श्रोताने किसीभी प्रकारका नहीं करना निश्चल भावसे श्रवण करना।

(ख) यदि किसी श्रोताका सज्जन सबधी मित्र बधु प्रभृति बहुत दिनोसे व्याख्यानावसरमही नजर पडा तो-मिलन सबधी व्यवहार-शब्दगत-वा-शकेतगत-उतनी देरके लिये नहीं करना-तथा-उठकर जाना आनाभी नहीं-वह

मित्र-फेरभी मिलजायगा धर्म मित्र वारंवार मिलना कठीनतर है।

(ग) सभामें जो जो व्यक्ति आकर बैठगई है उसको उठाकर अथवा पीछे हठाकर-वा-उल्लंघकर-पीछेसे आनेवाली व्यक्तिने-इस प्रकार आगे जाकर बैठनेका प्रयत्न नही करना अमुककी योग्यता अधिक है या अमुक आगे बैठनाही चाहिये-या-अमुक निर्दिष्ट स्थानपर बैठनेका अधिकार अमुक ज्ञाति वा अमुक व्यक्तिका कदीमी है और अमुकका नही है इत्यादि दुराग्रह करना मानो बडाभारी तीर्थंकरोंका गुन्हा करना है। यदि इस प्रकार कोई सदस्य दुराग्रह करे वा आगु आकर बैठनेलगे तो अन्य श्रोतावर्गने उस ज्ञाति-वा-उस व्यक्तिका-दुराग्रह कभीनही चलने देना इतनेपरभी न माने तो अध्यक्षको शासन करनेका अधिकार है। तात्पर्य-जैसा आते चलेजावे तैसा क्रमश एकके पीछे एक बैठते चलेजावें। सभाका दधिवत् मथन करना अधिकार नहीं। चाहे छोटाहो चाहे मोटा, नोकर हो वा सेठ, बापहो या बेटा, श्रीमानहो वा गरीब चाहे किसी सभा-समाजका अग्रणीहो वा समान्य व्यक्ति हो सभा श्रोताओंका धार्मिक दृष्टया समान अधिकार है।

६-श्रोताओंका अपने घरके नोकर वगेरा समस्त स्त्री-पुरुषोंको यह बात हमेशाके लिये चेतारखना कि-जबहम धर्मोपदेश सुननेके लिये-व्याख्यान सभामें जावें-उतने समयके लिये किसीभी प्रकारका महत्व पूर्ण कार्य होतोभी-वहांसे-उठानेका प्रयत्न-शब्द-वा संकेत द्वाराभी मत करना-और न इतिलादेना।

(क) यदि देशान्तरसे किसी व्यापार सबधी अथवा अन्यान्य कार्य सबधी–पत्र–तार प्रभृति नदेस आवेतो–उतनी देरके लिये उक्तकार्य प्रकट करनेको किसीभी प्रकारकी चेष्टा न करने पावे।

(ख) उक्त नियमोंसे न जानने वाला कोइ प्रवासी किसी श्रोता को कुछ कहना चाहे वा मिलना चाहे या उठाना चाहे तो जो सभा भवनके द्वारपर रक्षक रक्खा गयाहै वह–उसको वहां रोककर–उस आगन्तुक व्यक्तिको सभाके नियम समझा देवे। द्वारपालके लिये यह अधिकार होकि वह अनजान व्यक्तिको विना पर्याकार्य पुछे सभाभवनके भीतर न आनेदे। यदि–कोई–व्याख्यान सुननेको आता होतो न रोके–और जो अन्यान्य किसीभी कामके लिये भीतर आता होतो न आनेदे।

(ग) गर्मी सरदी शोक वा हर्षका कार्य किसी श्रोताके यहांपर होजावे तो–भी उतनी देरके लिये–हर्ष शोक सबधी कुछ कार्य न करे।

७–व्याख्यानमें किसीभी श्रोताने देशविरति सामायिक नहीकरना।

(क) सभाभवनमें प्रथम सामायिक लेकर व्याख्यान सुनने को लालचसे न बैठना।

(ख) व्याख्यानके बीचमें सामायक लेना न चाहिये–और न पारना चाहिये। हां, व्याख्यान होजानेके बाद–बेशक जिसको सामायिक करनाहो वह करे–सामायक लिया हुएय–व्याख्यान–नही सुनना चाहिये।

(ग) व्याख्यानके बीचमें गुरु पोरसी पालते हैं उस समय

व्रत-नियम-पच्चखाण-गुरु मुखसे लेलेवें। व्याख्यान वाचतेके बीचमें नही लेना-व-वक्ताके बिना अन्यसे उस स्थानपर न लेवे।

८-व्याख्यान सभामें आनेवाले श्रोता (स्त्री-पुरुष) वर्ग अपने वा अन्य किसीके-लडके-लडकीको साथ न लावें।

(क) जो-बालक, बालीका-मल मूत्र हर किसी स्थानपर कर देताहो-उतने छोटे बालकको भी नही लाना।

(ख) जो बालक बडाभी हो किन्तु खेल-कूद-गुल शोर करता हो अथवा शास्त्रके रहस्यको न समझताहो ऐसे बच्चेकोभी न लाना चाहिये। हां, जिसबालककी पनरा वर्षके करीब वयहो व समझदारभी-कुछ-पढा हुआहो, शास्त्र-निश्चल भावसे सुनसकताहो ऐसेको आनेकी मना नही इनगुणोंसे हीन बालकको नही लाना।

९-यदि-किसी श्रोताको व्याख्यानमें बैठहुवेको मल मत्रकी असह्य शंकाहुई होतो वगर रज बीचमें उठ सकता है। किन्तु-अमुक स्थानपर मैं बैठाहुवाथा उसमें मही पीछा आनेपर बैठुंगा यह दुराग्रह करनेका अधिकार नही है। शंकादूर करके आनेपर सभी श्रोताओंके पीछे बैठकर व्याख्यान सुनना चावे तो सुन सकता है।

१०-वक्ताका अविनयहो वसा वर्ताव श्रोताको नही करना चाहिये।

(क) तकीया गादी लगाकर बैठना, पाव उपर पाव रखना लम्बेपाव करना, वक्ताकोपीठदेना, पान सुपारी लवंग इलायची वगैरा मुखवास खाना, झूंठे मुख-बैठना,

सोजाना-कुच्छित आसन बेठना, वगेरा वर्ताव नही करना चाहिये। व वक्ताके सन्मुख शान्ति पूर्वक-पद्मासन बेठना चाहिये।

११-श्रोताने व्याख्यान भवनमें आते वक्त पचाभि गमन करके आना शस्त्र-लट्ठी (यष्टिका) उपानह (जूते) वगेरा जिन वस्तुओंसे अविनयहो अथवा शान्तिभगहो वैसी चीजें नही लाना-" मैं सबसे बडा हूं " एसा मान कर गौरव युक्त कुछ अनोखा कार्य न करना अथवा जिन चीजोंके लानेसे शास्त्रका और वक्ताका व सभाका मान भग होताहो ऐसी चीजें सभाभवनमें न लाने पावें।

(क) किसी श्रोता (स्त्री-पुरुष)के साथ दास दासी-नोकर चाकरहो तो सभाभवनके बहार बठा रखना चाहिये। दास दासीको साथलाना केवल गौरवका चिन्ह है इससे अविनय होताहै-इसलिये भीतर न लावे। दुसरी बात यहहै के लोक कुछ शास्त्र श्रवणके प्रेमसे नही आते-वेतो-केवल मालिककी सेवा बजानेको आते है इससे भीतर आनेसे उनकी आत्माको कुछ लाभही नहीं। इसलिये भीतर आना उनका व्यर्थ है।

१२-चद्दा-टीप-करना-पालना झूलना, स्वप्नोकी पोथीका घृत बोलना वगेरा पहले या-पीछेकर लेवे-व्याख्यान वीचनकरें

१३-मलीन-अपवित्र-दुर्गंधयुक्त अशोभनीय वस्त्र पहेर कर श्रोताने सभामें नहीं आना किन्तु निर्मल-शुद्ध-पवित्र चाहे धोयाहुआ क्यो नहो किन्तु शोभ्य सौभनिय वस्त्र धारण कर आना चाहिये।

१४-पूर्वादि देशोंमें स्त्रीयोंके लिये पर्दा करनेकी रसमहै किन्तु-यह रशम व्याख्यान सभामें करना शास्त्र विरुद्ध है इस कारण व्याख्यान सभामें शास्त्र सुननेके लिये बैठीहुई स्त्रीयोंको पर्दा नही करना।

१५-प्रभावना करनेवालेने-व्याख्यान पुराहुवे वाद प्रभावना देनी चाहिये यदि-पेस्तर लाई होतो ऐसी जगह पर रखनी चाहिये जिसको लडके बचे वगेरा कोई देखने न पावे। व-ज्यादी न रखना-मिठासके कारण-कीडी-मक्खी वगेराजीव जंतुओकी हिंसा आदि होनेका सभव रहताहै। और लडके बचेभी प्रभावना देख गुलशोर करते हैं।

(क) सस्ती चीज देखकर लालच वश अमक्ष वस्तुकी प्रभावना न करना।

(ख) प्रभावना स्वपरधर्मी सबको देना।

(ग) शोक-सतापका वहाना लेकर जो प्रभावना नही लेते वे दोषी हैं।

उपरोक्त नियमोंके पालन होनेसे-व्याख्यानमें होती अनवस्था बध होसकती है-व-श्रोतावर्ग लक्षपूर्वक-व्याख्यान सुन सकते हैं। वक्ताके कथनोका आशय जभी समझा जा सकताहै शान्तिपूर्वक एकाग्र चित्त द्वारा शास्त्र सुननेमे आवे, । जो कार्य नियम पूर्वक होता है उसमें अनवस्था कभी नही होती. व परिणाम सुखकर होता है और जिस कामके करनेमें कुछभी नियमोंका पालन नही कियाजाय वह अनिमियतकार्य-न पूरा होसकता और न उस कामको करनेवाले लाभ उटा सकते। अतएव नियम विरुद्ध कार्य करना केवल मूर्ख-

ताहै। चाहे धार्मिक कार्यहो-सामाजिक हो, ज्ञातियहो, व्यवहारीकहो सभी कार्योंमें नियमोंकी आवश्यकता है।

यद्यापि-जल्दीके कारण उपरोक्त नियमोंके लिखनेमें कुछ त्रुटी अवश्य रहीहोगी तथापि प्राज्ञ पुरुष-इन नियमोंकी और कृपा कटाक्ष द्वारा निरीक्षण करे-व्याख्यानमें इन नियमोंका पालन होने का प्रयत्न करना प्रारंभ, करदेवेंगे तो द्वितीया आवृत्तिमें फिरभी सुधारणा करदी जायगी

इन नियमोंको हम लिख रहेथे उस समय श्रोता (श्रावक) हमारे समीप बेठाहुआथा, उसने यह विनय कियाकी " महाराज! आप इन नियमोंका, विवेचन इस ग्रथमें अवश्य करें-यदि-विवेचन नहीं कियाजायगा तो अल्पज्ञ इसके आशयको नही समझेगे व-दुराग्रही कुतर्क किये विना नही रहेगे विवेचन करनेसें नियमोंकी अधिक पुष्टी होगी " उनका यह कहना ठीक मालुम होनेसे हम यहां पर श्रोता और वक्ताके प्रश्नोतर रूपसे विवेचन करेंगे इससे पाठक वृन्दको पढनेमें ठीक मालुम होगा और नियमोंका पालन करनेका हेतुभी समझमें आजावेगा। जहा "श्रोता" ऐसाहो वहां प्रश्नकर्ता और जहां " वक्ता " ऐसा हो वहा उत्तर दाता समझ लेना।

१ श्रोता -आपने प्रथम नियम पालन करनेके लिये लिखा है किन्तु यह नियम सर्वत्र पालन होताही है फिर इसके लिखनेकी आवश्यकता मुझे विदित नही होती?

वक्ता-ग्रथका यह नियम हुआ करता है कि-जिस विषयका जो ग्रथहो-उस विषयका प्राय कुल वर्णन उस ग्रथमें आजाना चाहिये-ऐसा न करनेसे त्रुटी विदित होती है। दुसरी बात यहहै कि-यद्यपि कई देशोमें प्राय व्याख्यान भवन उर्फ (उपाश्रय)

अलाहीदा होता है तथापि अज्ञ जैनी नियमोंसे ठीक उलटा वर्ताव उपाश्रयमे करते है। कहीं २ तो रिपेरर वर्षोंतक नही होती, कई मुल्कोमे उपाश्रयोमें चोपड-शतरज वगेरे खेल खेले जाते है, खान पान गृहस्थ करते है, सिंहान पाटीये ठीक नही रहते या वडेही मलीन रहते है, कहीं २ झाडझूडभी नही होती, इस लिये उक्त नियमका सर्वथा पालन होना चाहिये। कई स्थानोंमे गुरुओंका आगमान सुनकर तुरत सब तैयारी करदेते है, किन्तु यह निरी भूल है, सदाके लिये व्याख्यान भवन कायम रहनेसे-उसकी उपयोगीता बनीरेती है वक्ता गुरुके अभावमेंभी श्रावक श्राविका वहापर स्वाध्यायादि धर्म-कृत्य करसकते है-व-लायब्रेरी आदिभी वहापर करदिया जायतो कोई हर्जनही. ज्ञानका लाभ सबसे अधिक है। सदाके लिये उपाश्रय स्वतन्त्र अलाहीदा न रखनेसे कई तरहकी आपत्तिया धर्म-कृत्यमें आती है, इसका एक ताजा उदाहरण सुनलिजिए! विक्रम सवत् १९६५ का चातुर्मासके लिये हमको आकोला जैन श्वेताम्बर सघकी विनति होनेसें उक्त वर्षका चोमासा हमारा आकोलेमें था, व्याख्यान हमेशा होताथा, प्रायः सभी श्रावक श्राविकाएँ व्याख्या-नमें आते थे इसवर्ष धर्मकी तरकी (उन्नति) आकोलेमें बहुतहुई कई सभाएँ होकर अच्छे २ धार्मिक नियम बांधेगये कई श्रोता मेरेपास रात्रीको १२ बजे पर्यन्त बैठे रहते थे, तात्पर्य इसवर्ष आको लेके जैनीयोंको धर्मप्रेम बहुत रहा, हमारी लिखी हुई किताब जग-त्कर्तृत्व-मीमांसा छपनेका कुलखर्चा आकोलेवालोंने दिया चोमासा समाप्त होजानेपर हमने विहार करनेका इरादा किया किन्तु श्रोता वर्गने विनंतिकी महाराज! आपने भावनाधिकारमें जयानन्द्रके मलीचरित्र प्रारभ कियाहै वह हमें सपूर्ण सुनाकर पधारें, हमनेभी धर्मका लाभ देखकर यह विनंति स्वीकार करली! शीतकालमें प्रायः

अन्तरीक्ष पार्श्वनाथजीकी यात्राको यात्री विशेष आया करते है और उसवर्ष सिंहस्त (सिंहराशीपर गुरु) होनेके कारण विवाह वगेरा बंधथे इससे अत्यन्तही विशेष यात्री आयेथे अन्तरीक्ष-पार्श्वनाथकी यात्राको जानेवाले यात्रीयोंको आकोला ष्टेशन उतरके जाना होता है। इससे जितने अन्तरीक्ष पार्श्वनाथकी यात्राको जातेहै वह एकदो दिन अवश्य आकोले ठहरते है। उसवर्ष यदि एकाद दिन खाली चला जावेतो दूसरे-तीसरेदिन पचास-सो-दोसो एकदम जरूरही आवें इतनी भरमारथी। और उनदिनोंमें आकोलेके मदिरमें यात्रीयोंके उतरनेको मकान छोटा होनेसे बहोत तकलीफ होतीथी। और प्राय यात्री जितने आतेथे उतने अविवेकी अज्ञानी-अल्पज्ञ-आतेथे। जिनमदिरकी ज्ञानकी आशातना करतेभी जिनको कुछ भयनही लगताथा-कई यात्री अपने और स्त्रीयोंके पहरेहुवे वस्त्र-साडी वगेरा धोकर जिनमदिरमें सुकानेको जानेकोभी कमनही करतेथे किन्तुजब-रोक-टोक कर दियेजातेथे तब लाई लाजहोकर बेठतेथे इतने परसे पाठक विचार कर सक्ते है कि ऐसे लोक ज्ञान और गुरुको तो क्या समझ सकते हैं? यात्रीयोंके सबधमें एक निबध अवश्य लिखनाहै इसलिये और अधिक लिखनेसे विषयान्तर होजानेके कारण यहापर इतनाही लिखना युक्त समझताहू। अस्तु। ऐसी दशामें वे यात्री व्याख्यान भवनपरही आक्रमण करने लगे? उक्त भवनमें खानपान अस्पृचीतक करने लगे, और गुरु स्थापनाकी और पुस्तकोंतकका अविनय होना प्रारभ होगया व्याख्यानके पाट उपर वालबच्चे बैठकर रोटीया खाने लगे और समीपके कमरेमें जहा हम ठहरेहुवेथे उसकाभी वही हाल होने लगा हम बहोत समझातेथे मगर सुनताहै कौन? जब हमने आकोलेके सभ्य श्रावकोंसे कहाकि-व्याख्यान भवनमें ऐसा होना ठीक नहि है इसलिये

जहांतक हम यहां रहे और व्याख्यान चालु रहे तहांतक एक विशाल मकान किरायेसे या किसी प्रेमीसे थोडे दिनोंकेलिये मांगके लेलो जिस रोज अधिक यात्री आवे तब वहापर उतारदिये जाय इससे यात्रीयोंकोभी तकलीफ न होगी और हमकोंभी न होगी और धर्म कार्यमेंभी हानी नही पहुचेगी। हमारा यह कहना सुनकर प्रायः वहुतसे सुज्ञ लोकोंने स्वीकार करलिया और मकान किराये लेनेकी तलाशभी करने लगे किन्तु दो चार 'डेढशाहने' थे उन्होंने यह आन्दोलन करना प्रारंभ किया कि-"संघ सबसे वडा है! संघको महाराज व्याख्यानशालामें क्यों नही उतरने देते! जिस दिन यात्रि हो उस रोज व्याख्यान बंध रखदेना और जिस रोज यात्री नहो उस रोज व्याख्यान बाचना! वगेरा अज्ञानता झलकानें लगे? जब दुराग्रहीयोंका हठ देखा तो हमने साफ कहदिया "व्याख्यान शालामें यात्री हरगिज नही ठहर सकते" इसके नजदीक जो धर्मशालाका भवन है उसमें जितने यात्री ठहरसके उतने वेशक उतर जावे यदि अधिक आवे तो यहा श्रावकोंके घर बहुत है अपने घरोंमें उतार लेवें या जगहकी तजवीज कर देवे! इसपरसें उन दुराग्रहीयोंने घोर प्रतिवाद चलाया और अन्तमें आकोला जैनश्वेताम्बर संस्थानके सेक्रेटरीद्वारा वम्बइको एक पत्र श्रीमान् ललुभाई करमचंद दलालको सेक्रेटरीके नामसे उन्होंनें लिखवाकर भेजावाया उसका उत्तर ललुभाईकी ओरसे सेक्रेटरीको आया वह पत्र योग्य होनेसें उसकी नकल हम यहांपर देते है पाठक इसे लक्षपूर्वक पढे!

"भाई हरगोविंद विठ्ठलदास, मुंबइथी लिखी-मगनलाल कुम्कुम् चंद-तमारो कागल पोच्यो तमे परन्तु ते बाबत महाराजश्रीने मलीने लखीश पण मारू मानवु तमारी विरुद्ध छे व्याख्यानशालानी जग्या जुदीज रहेवी जोइये, यात्राळु माटे बीजी जगे गोठवण करवी

आपणी फरज छे. ज्ञानने लाभ सौथी मोटो छे. वली एवु कोए जगे साभल्यु नथी के उपाश्रयमां मुसाफरो उतरे धर्मशाला जुदीज होय छे. तमोए पण धर्मशाला, व्याख्यानशाला, केवल जुदु पाडेल छे अने ते रीतें उपयोग थवो जोइये आजे व्याख्यानशाला बध करवा तैयार थाय तो काले देराशरनी उपरनी जगा पण वापरवा मन थाय अने ते तमे समजी सकसो के खोडु थाय, तेज रीते व्याख्यानशाला माटे पण खोडु थाय. घणा माणसो आवे तो श्रावकना घरों क्या नथी ? उतरवाथी जगा पण खराब थाय व्याख्यानशाला स्वच्छ जुदीज जोइये आ प्रमाणे मारु मानवु छे अने मुनिश्रीअे पण मारा विचारनेज अनुकूल थवाना इत्यादि द. लल्लु.

इसप्रकार चारोंओरसे उनकी वातका खण्डन होने लगा तब चुप रहें तथापि मनमें तो दुराग्रह रखनेंही रहें

नीतिशास्त्र कहताहै

मूर्ख शिष्योपदेशेन–दुष्ट स्त्री भरणे नच,
दु खिते सम्प्रयोगेण, पण्डितोप्यवसीदति ॥१॥

अर्थ'–मूर्खशिष्यकों उपदेश करनेसें, दुष्ट स्त्रीके पोषणसें और दुखियोंके साथ व्यवहार करनेसें पडित जनभी दु खपाताहै । पहले कहाहै वहुतही ठीक कहाहै ।

हमने स १९६५ के माघ शुक्र पचमीकों आकोलेसें विहार किया और यति परिपदूका आमत्रण होनेसें हम सुरतकी यति परिपदूमें जाकर सामिल हुने अस्तु । देखिए ! मेरे प्यारे जैनीमित्रों जिनकों गुरुओंके शास्त्रयुक्त वचनोंपर श्रद्धा नही. मलमूत्रके पिंडोंकों

वार्य वश अथवा जातीय–प्रेमवश वीरप्रभुकी पवित्र वाणीसें अधिक समझतेहैं इससे बढकर अज्ञता–दुर्विदग्धता क्या होती होगी ? और इससें बढकर अधर्म क्या होताहोगा ! अन्याय ! अन्याय ! ! महा अन्याय ! ! ! कई स्थानोंमें अज्ञ जैनियोंद्वारा उपाश्रयोंमें बहुत कुछ अयोग्य कार्य होतेहैं उनको अटकानेका प्रयत्न समझदार जैनीयोंने अवश्य करना चाहियें. और हमनेभी इसी हेतुसें यह नियम दर्शायेहैं मारवाड प्रभृति देशोंमें यतिलोक–चोपड शतरंज आदि खेल उपाश्रयोंमें खेलतेंहै उनको भी अटकानेकी आवश्यकताहै । धर्मस्थानोंमें खेल खेलना महापापहै. गुरुका स्थापनाका ज्ञानका अविनय करना यहभी महापापहै । इस और जैनी मात्रने लक्ष पहुंचाना उचितहै अस्तु ॥१॥

२ श्रोता–आपने दूसरें नियममें लिखाहैकि–वक्ता–गुरु–जैन शास्त्रोंका और व्याकरण न्यायका पढा हुआहो वही व्याख्यान वांचनेपावें अन्य नही सो–व्याकरण–न्याय सीखना कहा लखाहै यदि व्याकरण और न्यायका पढा हुआ नहो और किया पात्रहो तो क्या व्याख्यान श्रोतानें नही सुनना ?

वक्ताः–हा, चाहे किया पात्र क्योंनहो–व्याकरण-न्यायका पढाजो मुनि नहींहै और व्याख्यान वाचनेको सभामें बेठताहै तो वह बेशक दोषीहै ! व्याख्यान सभामें स्वपर दर्शनीसभी आया करतेहैं–यदि व्याकरण न्यायका पढा हुवा वक्ता न हुआ तो शास्त्रोंके रहस्योंको युक्तिद्वारा समझा नहीं सकता इससें अन्य दर्शनीयोंमें जैन दर्शनकी निन्दा और वक्ताको बहुल ससारी होना होताहै क्योंकी विना व्याकरण न्यायके पढे सत्य प्ररुपणा किसी प्रकार नही होसकती और असत्य उपदेश करनेके समान कोइ दुसरा पाप नहींहै इससे जैन शास्त्रानुसार व्याकरण–न्याय ग्रंथ पढनेकी वक्ताको आवश्यकताहै । श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रमें लिखाहै कि'—

" नामक्खाय निवात उवसग्ग तद्धिय समास संधि पय हेउ जोगिय उणाई किरिया विहाण धातुसर विभत्तिवण्ण जुत्त।",

व्याख्या—तथा नामाख्यातनिपातोपसर्गतद्धितसमाससंधिपद हेतुयोगिकोणादिक्रियाविधानधातुस्वरविभक्तिवर्णयुक्तम्

(वक्त व्यमितिशेष:)

तात्पर्यार्थ यहहैकि नाम-आख्यात-निपात-उपसर्ग-तद्धित-समास-संधि-पद-योगिक-उणादि-क्रिया-विधान-धातु स्वर-विभक्ति वर्णयुक्त वचनोच्चार सत्यमें गिना जाताहैं-इन बातोंका ज्ञान व्याकरण पढें विना नही होता इसमे वक्ताको व्याकरण अवश्य शीखना चाहिये। स्थानाङ्ग सूत्रकें आठम ठाणेमें-आठ प्रकार विभक्तिका स्वरूप कहाहै यदि रहीत शास्त्र सफलनाहोती तो विभक्तियोंको दर्शनेकी आवश्यकताथी? यदि कहां जाय विभक्ति रहीत तो शास्त्र सफलना नहींहैं तो फिर यह हमे कहनाही होगाकि—विभक्तियोंका स्वरूप जाने विना शास्त्रोका सत्य अर्थ वक्ता किसी हालतमें नही कह सकता! इसीप्रकार श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें विभक्ति वगेराके संबधमें बहुत विस्तार पूर्वक लिखा हुआहै। और इसी अनुयोगद्वार सूत्रमें ६ प्रकार व्याख्याका लक्षण प्रतिपादन कियाहैं—और इन लक्षणोंसें—व्याकरण और न्याय इन दोनो शास्त्रोंको सिखना सिद्ध होताहै

सहिया य पय चेव, पयत्थो पयविग्गहो चालणा य पसिद्धीय छविहं विद्धि लक्खण ॥ १ ॥

भावार्थ—सहिता-पद-पदार्थ और पद विग्रह (समास) यह चारतो व्याकरणके विषयोंसे संबध रखते हैं अर्थात् व्याकरणके हैं। और चाल्ना तथा प्रसिद्धि यह दो न्यायके विषयोंसे संबध रखने

वाले हैं । इस अनुयोगद्वारकी गाथासें व्याकरण और न्याय वक्ताको पढना स्वयमेव सिद्ध होगया । व्याकरण और तर्कशास्त्रसे वंचित पुरुष उक्त षडविध लक्षण नही जान सकता और इनको जाने विना सत्य अर्थ नही होसकता और श्रोताकी तर्कोका योग्य समाधानभी नही करसकता इसलिये यहवातही कहेकि गीतार्थहो वही सभामें व्याख्यान करसकता है और जो गीतार्थ बनना चहावे वह व्यक्ति संस्कृत प्राकृत व्याकरण और तर्कशास्त्र पढे बाद गुरुद्वारा जैनशास्त्रोंके अर्थोंको जाननेकी इच्छा करे तभी गीतार्थ होसकता है । गीतार्थके विना जो व्याख्यान करते हैं वह बडे भारी दोषी है.

ढुंढिये मतके-साधु-व्याकरणको नही पढते और शास्त्रोंका केवल कपोल कल्पित अर्थकरते हैं. उनके देखादेखी यतियोंनेंभी बहुधा व्याकरण-न्याय पढना छोड-भाषानुवाद-टब्बोंसे काम चलाने लगेंहे-लोभदृष्टि वढजानेके कारण-ज्ञान मार्गको क्रमशः त्याग ते चलेंहे यह उनके लिये भावि-बहुत दुःखमदहै अवभी इस वातका विचार करेंगे तो बहुत अच्छाहोगा ! इसी तरह संविग्न साधुओंमेंभी थोडे वर्षोसें बहोत अन्धाधुन्धी मचगई है " कोई किसीकी नही सुनता कुसम्पने क्रियापात्र कहलाने वालोंमेंभी अपना प्रभाव जमादिया हैं । गुरुके साथ अनवनाव हुआकि शिष्य-अलग विहार करने लग जाताहे-अकेला विहारी होनेसे मुनिधर्मसे कईतो पतित होजातेहै । ऐसे अनपढे मुनि वक्ता वनकर उपदेश करनेको जाते हैं फिर अर्थका अनर्थ क्योंन हो ! पर्यूषणोंके दिनोंमें कल्पसूत्र हरकोइ वाचनेको बेठजाताहै जिन्हें यहभी मालुम नही है कि कल्प सूत्र क्या चीजहै ऐसे अल्पज्ञ-मुनि-यति-मथेन कल्पसूत्रके वक्ता होने जाते है वे हमारी समझसेतो भवसमुद्रमें डूवते है और सुनने वालेभी-डूवते हैं । यदि ऐसे उपदेशक संसारमें नही उत्पन्न होते

तोभी वर्था। अतएव यति-मुनि-योंस मेरी यही प्रार्थना है यदि आप अधिक कुछभी नही करसकते होतो वहतर है-व्याकरण, न्याय-और जैन शास्त्रोंको गुरु मुखसे अवश्य धारण करलेवें. इससें सभी सत्योपदेश करनेमें समर्थ होजावें. यदि इस कार्यके लिये कोई महाभाग परिश्रम उठावे तो क्याही अच्छा हो ? नितिशास्त्रका कथन है कि " वियाहीन गुरु त्यजेत् " अर्थात् वियाहीन गुरुको शिष्यने त्याग करदेना. यह वात श्रावग वर्गने याद रखकर-उपदेश सुनना चाहिये।

श्रोता'-आपने यति-मुनि अवश्य होना लिखा सो-यति-मुनि इनदोनों शब्दोंको लिखनेका क्या कारण होगा ? क्योंकी दोनो पर्याय वाची शब्दहै। इन शब्दोंका मतलब जैनदीक्षीत साधुओंसेहै ?

वक्ता'-यद्यपि जैन शास्त्रोंमें इन दोनों शब्दोंका मतलब एकहीहै तथापि कई शताब्दीयोंसें श्वेतवस्त्र धारी साधु उर्फ यतियोंका क्रिया मार्गकी ओर लक्ष कम होनेके कारण कई महाशयोंने क्रिया उद्धार किया उनदिनोंसें दोनों पक्ष अलग नामोंसे संबोधन होने लगेहै इसलिये हमने यहापर दोनों शब्दोंको व्यापमें लियेहैं। यद्यपि यतिलोक वर्तमानमें अपने कर्त्तव्यसे बहुत पीछे रहे हुवेहैं तथा फिरभी उपदेशक वर्गमें गणना इस लिये होसकती हैंकि यतियोंमें जेनागमके जानकार-विद्वान-श्रद्धावान् आस्तिक-उपदेशक अवभी बहुतहैं। यदि जैन समाज यतियोंकी भावि उन्नति होनेका प्रयत्न करें तो जैन समाजमे साक्षरोंकी कभी कमी नरहे परतु जैन समाज निन्द्रादेवीकी गोदमें सोता हुआहै । जैन शास्त्रोंका यह मतहैकि-क्रियामार्गमें कुछ न्यूनताभीहो परतु धर्मोपदेश सत्य करताहो तो उसके वचन ग्राह्यहै व-उस यतिकी गणना उपदेशक वर्गमें होसकतीहै । यतियोंका जैन समाजने यह एक फिरभी उपगार मानना चाहियेंकि-कर्मवश-धर्मानुसार क्रिया नहीभी करसकें तोभी

सिद्धांतोंके पाठोंमें-वा सत्योपदेशमें यत्किञ्चित् परिवर्तन नही किया ! यह यतियोंकी अनुपम श्रद्धा झलक मार रहीहै । और इसीलिये जैनसमाज इन्हें उपदेशक-गुरु समझ उपदेश सुनताहै । इन कारणोंसे-यति मुनियोंमें भेद न समझकर दोनोंको उपदेश करनेमें समान अधिकारहै ऐसा समझना चाहिये ।

श्रोताः-मथेनाके संदर्भमें जैन समाज क्यों नही विचार करता ?

वक्ताः-मथेन ज्ञातिको जैन कोममें समझना बडीभारी भूलहै मथेन जातिकी कुल रस्म मिथ्यात्वियोंकीसी दीखरही है ? अनेक मथेन वल्लभ सुप्रा (भक्तत्तया) वैष्णवादि मतके होकर बैठेहुवे हैं । अर्हन् देवोंके मंदिरमें वर्षोतक नही जाते-और घरोंमें शिव-विष्णु-और देवीकी पुजा कर विना अन्न भक्षणतक नही करते इस प्रकार मिथ्यात्वका सेवन करने वालोंको किन गुणोंसे हम जैनी कहे ? कई निर्द्रव्य मथेन उदर निर्वाहनार्थ जैनी बनजाते है और " हमतो परम्परासें जैनी है " ऐसा कहकर अपना काम निकालते है। भाटोंकी तरह ओसवालोंकी पीढीयोंके नाम लिखते हैं और कहते हैः-" हमतुमारे कुलगुरुहै " चाहे जातीयदृष्टिसें वे कुछभी मानें किन्तु धार्मिकदृष्टिसे उन्हें मिथ्यादृष्टि सिवाय हम और कुछ नही कह सकते । मथेन जाति-पतित यतियोंद्वारा उत्पन्न हुई है-इस जातीमें गृहस्थोंके जितने संसारी कार्य है उतने कुल विवाह आदि कार्य होते हैं । मथेनोंको हम देश विरतीभी नही कह सकते । और जैनदीक्षाके सिवा जैन गुरु नही हो सकता, इसलिये उनको जैनगुरु मानना तो अन्धकारको प्रकाश माननेके तुल्य है । जोलोक मथेनोंको वंदना करते हैं वे केवल जैनशास्त्रोंके अज्ञजीव हैं जैन शास्त्रोंके रहस्यको जो कोइ समझताहोगा वह कभीभी मथेनोंको वंदना नही करेगा ! यद्यपि हमारे इस लेखको देख मथेन लोक-अवश्य नाराज होंगे परंतु क्या

कियाज! लेखकका यथार्थ लिखना चाहिये। तीर्थंकरोंकी आज्ञाकी और दृष्टिकरोंकी महात्माओंकी उर्फ-मथेनोंकी नाराजीपर दृष्टिकरें। चाहें कोइ खुशहो या नाराज-मगर यह पहनाही होगा कि मथेनोंको धर्मोपदेशक गुरु मानना ऐसाहि जैसा-वैश्याको पतिव्रता मानलेना इसलिये मथेनोंको धार्मिक कृत्य जैन समाजसे करानेका अधिकार सर्वथा नहीं है। मथेन अपनि उन्नति चाहेतो-अपनी ज्ञातिके नियम जैन शास्त्रोंके अनुकूल धारे-व-सजयह प्रतिज्ञाएँ करें कि मथेन जाती आजसे सर्वथा जैनी नियमोंके विरुद्ध वर्ताव न करेगी तो अवश्य इसपर जैन समाज विचार करसकता है।

श्रोताः-उपदेष्टा गुरुके अभावमें-यति मुनियोंके शिष्य या-विद्वान श्रावक व्याख्यान न करना इसका क्या कारण?

वक्ता-यति मुनियोंके अदीक्षित शिष्य व श्रावकोंको उपाश्रके आसनपर बैठकर शास्त्र वाचनेका इसलिये अधिकार नहीं हैकि-जहां तक जैनदीक्षा गुरुके पास नहीं ली ओघा मुहपति आदि चारित्रोपकरण धारण नहीं किये तहांतक उसपदका अधिकारी वह नहीं हुआ यह पद केवल चारित्रवान् गीतार्थकाही है। हां, उपदेष्टाके अभावमें अदीक्षित यतिशिष्य वा श्रावक समान स्थानपर बैठकर प्रकरण ग्रंथ वा अनुवादित ग्रंथ सभामें वाचसकते हैं किन्तु आप्त ग्रंथोंको वांचनेका अधिकार अदीक्षितको नहीं हैं

श्रोता-वक्ता-उपदेश कररहा हो उससमय यदि अन्य वक्ता चलाआवे तो उसके बराबर न बैठे वा नमन आदि कुछभी न करे सो क्या कारण?

वक्ता-सभामें उच्च सिंहासनपर जिनेंद्रोकी वाणीका उपदेश करनेकेलिये वक्ता उससमय बैठता है इसलिये उसके बरोबर अन्य

वक्ताको बेठना अयुक्त है' वह मान जिन वाणीके प्रचारककोही है। जो जिनेन्द्रोकी वाणीका प्रचार करनेका प्रयत्न करता है उसकी ईर्ष्या करना यानी बराबर बेठनेका दुराग्रह करना, वा-मान अपमानका विचार करना केवल अज्ञता है। हां एक बात अवश्यहै कि-कोइ वक्तासे अधिक विद्वान दीक्षावानहो तो वह उस स्थानपर न आवे। यदि वक्तृत्व होते कोइ संयमी आभीजावेंतो वक्ताउसें वंदना प्रकृति स्वागत उतनी देरकेलिये नही करसकता। हा व्याख्यान हुवे वाद सब विधि करें। संसारमें सदुपदेश देनेवाले वक्ताओंका मिलना बडाही कठीन है। कहाहै:-

विपमोऽपि विगाह्यते नय कृततीर्थ· पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेप दुर्लभ· सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्मय ॥

३ श्रोताः-जिनको अपना पूज्य मानकर उनके पास उपदेश श्रवण करनेकों जाते है उनकी आज्ञाका भग कोन करसकता है?

वक्ता'-आजकलके श्रावक प्राय. बहुधा ऐसे है कि जिनको यह ज्ञान बिलकुलही नहीं है कि-अपने पूज्योसे किस प्रकार वर्ताव करना, फिर वे विनय किस प्रकार रखसकते हैं यह पाठक स्वयं विचार करलें। हमनें वक्ताकी आज्ञा वारवार भग होती देखी है इसी लिये यह खाश तीसरा नियम रखनेकी आवश्यकता समझी गई। प्रस्तुतके श्रावकोंमें अविद्याके प्रभावसे यह अभिमान खूब छारहा है कि उपाश्रय और मंदिरोंका प्रबंध हमारे अधिकारमें है इसलिये हम मालिक हैं, अन्न-वस्त्रादि सहायता हमलोगोंद्वारा मिलती है तब वक्ताओंका काम चलता है, अर्थात्-जैनसमाजका सूत्र हम लोकोंकेही हस्तगत हैं इसलिये वक्ता हमारे कथनोंमे यदि न चलेंगें तो वक्ताका अधिकारही नही रहसकता वा-हम उनको स्वीकार न करेंगे" ऐसे कुत्सित विचार होनेसे उन्हें सत्योपदेस नही रुचता।

कुप्रथायोंका बल बढ जानेसें श्रोतावर्ग दुराग्रही बन बेठाहै। ऐसे अ वसरमे वक्ताओंको उचित है कि-समाजको युक्तियोंद्वारा नितिमार्ग का अवलोकन करावें-सत्यमार्गपर लानेका प्रयत्न करें यदि समाजमें दोचार व्यक्ति दुराग्रही हो एकवार कहनेसें नमानें तो दुसरीवार उन्हें सभ्यतापूर्वक समझावें इतनेपर न माने तो सभासें अलग कर देवें यदि अन्य कोइ व्यक्ति उसका पक्ष करे तो उसकोभी यही शासन करें। यदि सारी सभाही दुराग्रही होजाय तो वक्ताको उचित है कि-ऐसी दुराग्रही सभामे वक्तृत्व बिल्कुल न दें। वि. न्या श्रीमान् शांतिविजयजी महाराज मानवधर्मसंहिताके पृष्ट ४१८ परभी यही बात लिखते है -

"श्रोता तीन तरहके कहे हुवे है। १-जानकार २-अजान कार और ३-दुर्विदग्ध। नंदीसूत्रमें लिखा है कि दुर्विदग्ध श्रोता ज्ञान प्राप्तिका अधिकारी नही। जहा सभी श्रोता दुर्विदग्ध मिले उस सभामें शास्त्र सुनाना कोइ असरत नहीं कागको दुधमें स्नान कराया जाय, कभी सफेद न होगा। इसी तरह दुर्विदग्ध श्रोता कभी नही सुधरता"

विचारका स्थान हे कि जब प्रथमसेंही श्रोता वक्ताके आज्ञाका भंग करता है तो फिर उपदेशपर वह कैसे अमल करसकता हैं? जो जो लोक जातीय वा देशीय कुप्रथायोंको दृढ धाररक्खी है धर्म-स्थानामभी स्वार्थबुद्धि वश उन्हे नही त्याग सकते वे हमारी समझसें बडेही पापके भागी है। कहा है -

*" अन्य स्थाने कृत पाप धर्म स्थानेषु मुच्यते-धर्मस्थाने कृत

* अन्य स्थानपर कियाहुआ पाप धर्मस्थानमे प्रायश्चित लेनेसे छुटसकता है किन्तु धर्मस्थानमें कियाहुआ दुराग्रह बुद्धिके साथ पाप नही छुटता.

पापं वज्रलेपो विधियते "

यह उक्ति दुराग्रहीयोंके सवधमें ठीक चरितार्थ होसकती है।' विचार करदेखिये ! रीत रस्मेंमें ज्यादेया. शास्त्र वचन ? यदि यों कहाजाय कि शास्त्र वचन ज्यादे और मान्य हैं। तो फिर उन्का पालन करनेमें इनकार क्यों ? कई यों झट कहदिया करते है कि-जातीय प्रबधमें यह रसम पडीहुइ है वहभी रखना चाहियें किन्तु वे यह नही विचार करते कि जातीके प्रबधोंमें धर्मका क्या सबध है ? हा, जातीय प्रबध वही ठीक कहा जासकता है कि धर्मानुकूल जिस जातीका प्रबध हो। कई जातीयोंम अवनतिके कालमे एसी भद्दी कुप्रथाएँ पड गई है वह केवल मूर्खोकोही मान्य होसकती है। विचारशील तो उन्हे स्वप्नमेंभी मान्य नही करसकते । जोलोक धर्मस्थानोंमें, धर्मकार्योंमें-रुढी-रसमको आगे लाते है यह अज्ञता हैं कुप्रथाएँ मिश्रित कार्योंको व स्थानोंको धर्मस्थानके बदले रूढीस्थान व धर्मकार्यके बदल रुढीकार्य कहना अनुचित नहोगा। जो लोक धर्मको कुछ चीज नहीं समझते है वे इस भव और परभवमे बडी तकलीफ उठाते है । जैनशास्त्रोंम विनयको प्रधान गुण माना है जो व्यक्ति इस गुणसे वञ्चित है किसीभी प्रकार जैनी नही हो सकता ? अतएव सिद्ध हुआ कि-जो व्यक्ति वक्ताकी आज्ञाका भग या उल्लघन करें उसकेलिये योग्य शासन करनेका वक्ताको अधिकार है ॥ ३ ॥

४ श्रोताः-आपने चौथे नियममें जो जो बात दर्शाइहै-उनका कुछ तात्पर्य समझादेंगे तो बाल जीवोंको लाभ होनेका सभव है ?

वक्ता-अनेक स्थानोंकी व्याख्यान सभाओंमें श्रोतावर्गकी ओरसे ऐसा गुल शोर होता हुआ हमने देखा-व सुनाहै कि जिसके

सबबसे वक्ताका उपदेश बिलकुलही किसी व्यक्तिको सुननेमें नही आसकता। क्या यह जेनीयोंके लिये लज्जास्पद नही हैं? । हां, एक बात अवश्य है कि यदि कोइ ऐसाही धार्मिक विशेष कार्य किसी समय सहसा आजायतो इस प्रकार बोलना उचित है कि जिसके साथ वार्तालाप करनाहो उस व्यक्तिके अतिरिक्त अन्य कोइभी व्यक्ति सुन न सके ऐसे धीरे २ और यथा प्रयत्न बहुत सख्येप शब्दोंसें वार्तालाप करलेवे ताकि किसीकोभी शास्त्र वाक्य सुननेमें अन्तराय नहो।

(फ) का मतलब यहहै कि-जोरसे वदन करनेमेंभी उपदेशम हानी पहुचती है और वक्ता-व अन्य श्रोताओंका लक्ष उपदेशसे हठकर वदन कारकी तर्फ झुलना चाहाताहै इसलिये व्याख्यानमें-खमासमणदेना वा " इच्छामि खमासमणका " पाठ उचारकरना-शास्त्रोंमें मना लिखाहै। देखो

" विक्खित्त पराहुत्ते-पमत्ते मा कयाई वदिज्जा,-
आहार-निहार-कुणमाणे-काउ कामेअ "

गुरु वदन भाष्य गाथा १५

अर्थ --१ व्याख्यानादि धर्मकथा करतेहो, २ पराङ्ग मुखवेठेहो, ३-निद्राआदि प्रमाद सेवनमेंहो ४-आहार और ५ नीहार करतेहो याने लघुशका वा वृहच्छका करतेहो या वाछतेहो अथवा करनेको जातेहो, इन पाच स्थानोंपर कदापि गुरुको वदना नही करना।

इसी तरह-शास्त्र वाचते गुरुने धर्म लाभभी नहीं देना। व्याख्यानमें-परस्पर नेत्रोंका मिलनाही वदन और धर्मलाभ रूपहै। श्रोता केवल हाथजोड चुपचाप बेठजावे।

(ख) का मतलब यह कि–अनेक स्थानोंमें–अकसर करके तकरारी बातें व्याख्यानमें निकला करती हैं पर्यूषण पर्व सरीखे महान् पर्व दिनोंमें और विशेषतया सवत्सरीके दिन–कल्पसूत्र सुनते समय अवश्यमेव तकरारी बातें निकले विना नहीं रहती। सारे वर्षका कदाग्रह कचरा वहांपर भी खिराजाता है। जातीय–खाजगीय ईर्ष्यायुक्त बातोंकी भरमार दृष्टिगत वहांपरही होने लगती है। अश्लिश शब्दोंका तो व्यवहार होना साधारणसा होजाता है, कहीं २ मार पीट होनाभी कोइ असभव नहीं है? वार्षिक प्रायश्चित लेनेके दिन ऐसा अधम कार्य करनेमें जो लोक भय नहीं करते ऐसे अन्यन्य दिनोंमें दुराग्रह करें इसमें आश्चर्यही क्याहै? इसलिये अध्यक्षको उचितहै कि व्याख्यान सभामें वाद विवादात्मक बातें नहीं निकालनेंदेवें यदि सभी सभाको वाद विवादात्मक किसी बातका निर्णय कराना आवश्यक विदित होतो–अन्य समयपर वैसी सभा करके मतभेदका विचारकर तय लेवे जिस सभामें केवल उपदेश होताहो उस सभाका उद्देश्य केवल–उपदेशकाही है और वाद विवादात्मक सभाका उद्देश मतभेदोंका निर्णय करनेका है इसलिये–उपदेशिक सभामें वादाविवाद किसीने नहीं करना.

(ग) का मतलब यहहै कि–कई देहशमें श्रोताओंमें यह खशलत हुआकरती है कि व्याख्यानके बीचमें " मैं जानकर दुनियामें कहलाउं–वा मुझे होशीयार समझें " इस आकाक्षासे अथवा मूर्खतासे अन्यान्य श्रोताओंमें वे झट यों कहदिया करतेहैं " अब यह कथा गुरुजी कहेंगे " या सहसा यों कहदेते है कि " महाराज! आप अमुक बाततो कही नहीं क्या भूलगये " अथवा " इस स्थानपर यों नहीं यों चाहिये " ईत्यादि मुर्खता भरे वाक्य बोल उठते है उसमें शास्त्रकी और वक्ताकी अवज्ञा एव मान भग होती है। और अन्या-

न्य श्रोता जो व्याख्यान रसमें तल्लीन हुवे होते है उनकी लीनताका भंग होताहै इसलिये ऐसा वर्ताव करना अनुचित है। कल्पसूत्र-श्रीपाल चारित्र और पर्वोकी कथा प्रभृति कई ऐसे ग्रथहै कि जो श्रोताओंको वर्ष भरमें एकदो वार अवश्य सुननेमें आते है और उक्त ग्रथोंकी कथाएँ प्रायः सभी श्रोता जानते है तथापि प्रत्येक वक्ताके-कहनेकी खूबी अलग २ है इससे श्रोतावर्गको वक्ताके वचनोंका श्रवण करनाही योग्य है।

(घ) का मतलब यहहै कि व्याख्यान वचतेमें किसीको कुछ प्रश्न करना हुआतो-उस समय न पुछने पावें यदि श्रोता स्मृति हीन होतो नोट बुकमें लिखरक्खें, या-यादरक्खे, व्याख्यानके बीचमें प्रश्नोत्तर करनेसे वस्तुत्व कोटीमें हानी पहुचती है इससे व्याख्यान समाप्त होनेपर पूछना अच्छाहै दुसरी वात यहहै कि-श्रोतातो बहुतहै और वक्ता अकेलाहै-जब-श्रोता प्रश्नकरने लगे एकनेएक प्रश्नकिया दुसरेने दुसरा तीसरेने तीसरा इस तरह प्रश्नकरनेसे अनवस्था होजानेका सभव है और वक्ता शकाओंका समाधानही करता रहेगा तो वह शास्त्रको कैसा वाचसकेगा? एक शास्त्र वर्षों तकमें पूराहोनाभी असभवहै अतएव व्याख्यानमें प्रश्न करना अयुक्तहै।

इस चोथे नियमसे शाब्दीक दुर्घटना अटकना सभवहै। इस लिये इस नियमका सभ्योंने अवश्यमेव पालन करना चाहिये। गुरुकी ३३ अशातनामें "गुरु धर्मकथा करते बीचमें ऐसा बोलना कि -तुमको क्या? यह अर्थ यदि नही? या अर्थ ऐसा नहीं है-इसतरह कथाका छेदन करे-परिषदका भगकरे यहभी आशातना शास्त्रकारोंने कहा है इसओर श्रोतावर्गने लक्ष पहुचाना चाहिये। आशातनाका अर्थ-" लाभका नाश" है। इस लिये विचारना चाहिये कि श्रोता कुछलाभके लिये उपदेश सुनना है या व्यर्थही? ॥ ४ ॥

५ श्रोताः—अपनेसें बडाहो उसका आदर करनेमे क्या दोषहै? कृपया बतलावें।

वक्ताः—श्रद्धावान् आस्तिक जीव धर्मसें अधिक किसी चीजको नही समझता, इस लिये धर्म कार्यों में रत हुवें पुरुषको—धर्म कार्योंकी ओर उपेक्षा करके संसारीक प्रेमवश सगे संबंधीयोंका आदर करना मानो श्रद्धासे न्युन होनाहै। यह काम शुद्ध श्रद्धान वालोंसें कभीन होगा! और दूसरी बात यहहैकि सम्बंधीयोंका परस्पर सत्कार धर्मसभामे होनेसें धर्माचार्यकी अवज्ञा होतीहै शास्त्रकारोंने उपदेशक आचार्य और गुरुको—राजाकी औपमानी हुईहै इस लिये राज्यकी अदालतोंमें न्याया-धीशके सन्मुख जिसप्रकार अदबके साथ व राज्य नियमानुसार पेश आतेहैं उसी प्रकार गुरुओंकी सभामे पेश आना चाहियें देखो शास्त्रोंमे क्या लिखाहै इस ओर गोर करो!

"जह दूओ रायागं, नमिउं कज्ज निवेईउंपच्छा।
वीसज्जिओवि वंदिग, गच्छाई एमेव ईच्छदुगं॥"

गुरुवंदन भाष्य.

अर्थः—जैसें दूत राजाको नमस्कार करके पीछे कार्य निवेदन करें और विसर्जन करनेपर भी फिर दूसरी बार वंदन करके जावें इसी प्रकार गुरुको भी दो वक्त वंदन करना।

इस गाथासें यह स्पष्टहै कि—धर्मके नायक गुरुहै उनका सन्मान राजा महाराजाकी तरह करना—और इस गाथामे यहभी ध्वनित होताहै कि—जैसा दूत राजाके समीप जाकर नमस्कार करके ठहरे और राजा जहा तक उसे विसर्जन न करें तहा तक वह अन्यकार्य कुछ भी न करें अर्थात सन्मुख बेठारहे इस प्रकार श्रोता गुरुको नमस्कार करके

व्याख्यानमें बेठें बाद जहा तक व्याख्यान समाप्त नहो, और सभाका विसर्जन नहो तहा तक बीचमें उठ कर जानें न पावें इसपरसें यह विचार ना चाहिये कि उतनी देरके लिये-ससारीक कुछ कामोंकी मना है तो फिर ससारीयोंका आदर करना कैसा उचित होसक्ताहै ? यदि न्याय दृष्टिसें देखा जाय तो आदरसत्कार करनेंसें जिस कार्यको करने बेठेहैं उस कार्यको (अधूरा) बीचम छोड अन्यकार्य करनेसें "अव्यापारेषु व्यापार" हुवा । और सत्कार आदि करनेमें शास्त्र श्रवणमें हानी पहुचे बिना सर्वथा नही रहसकती और ऐसा अनुचितकार्य करनेसें अन्यान्य श्रोता ओंकाभी लक्ष वक्ताके वचनोंपर एकाग्र न रहकर चञ्चल भावको प्राप्त होना कोई असभव नहींहै इत्यादि कारण कलापोंका विचार करनेसें यही बात ठीक विदित होती हैकि ससारीयोंका आदर सत्कार नही करनाही श्रेयस्कर है ।

(क) का मतलबहैकि जन्मदाता माता-पितासे अधिक-ससारमें कोई प्यारा नही होता उनकाभी सभामें पूरने आदर करना मनाहै तो फिर अन्योंके लिये मनाहो इसमें अनुचित ही क्याहै ! अवनतिके कालमें कई बदरशमें पडी उस समय व्याख्यान सभा सरथमें भी कई बदरशमें पड गई थी उनको अभी दुराग्रही खींचतेहैं । बडे शहरोंमें भी कई धनदुर्मदान्ध सागी व्याख्यान सभाको दधीवत् मथन कर सबसें आगु आकर बेठनेका प्रयत्न करते है अथात् बेठतेही हैं वे यह समझते कि हम धनवान है दुसरोंके पीछे कैसा बैठे ? इस अभिमानमें डुबरहे है इधर उनके आश्रयसे उदर निर्वाह-वा उनकी कृपाकटाक्षसे जीवन गुजारनेवाले स्वार्थवश उनको कुछभी नही कहसक्ते बल्के खुशीके साथ आगु बुलाकर बेठाते है । बहुधा गरीबोंमें धर्मका प्यार अधिक होनेके कारण वे-स्वाभाविक रीत्या आगे आते हैं और आगे बेठते है और श्रीमान् बहुधा अनेक प्रप-

योंके कारण पीछे आते हैं और आगु आकर बेठते है यह बड़ी अनीति है। यदि धनवानभी पेस्तर आवे और आगे बेठेतो कोई दोष नही किन्तु उन्हें तो धर्मकार्योंमेंभी दोचारवार बुलाना आवेतो आवें यह आकांक्षा रहती है फिर वे सबसे आगु कैसे जासकते है? वे धनमदमें भरें यह समझते है कि हमें कहनेवाला कौन है? और बातभी ठीकहै कि–आजकलके लोक खुशामदीये भगत ज्यादे हो जानेसें उनको कोई कुछ कहता नही " बाबावाक्य प्रमाणम् " इस न्यायानुसार धनीकरे वह सबको मान्यहै और बहुधा उपदेशक वर्गमभी मानके भुखे ऐसे अन्याईयोंसे " आवो सेठीया! पधारो पधारो!!! ऐसे गौरवशाली शब्दोंसे आदर करने लगे फिर वे अपनी अन्धान्धुनी क्योंन चलावें? ऐसे खुशामदीये वक्ताओंको वक्तानममशकुवक्ता मानना चाहिये और एसे धन दुर्मदान्ध श्रोताओंको धर्म्मोन्नतिम बाधा पहुचाने वाले ही मानना चाहिये जो धनवान जैनी अभिमानको त्याग धर्म्मोन्नतिके कार्योमें अग्रभाग लेतेहै वे अवश्यमेव धन्यवादके पात्रहै। तात्पर्य धर्म प्रेमीयोंको उचितहै कि असभ्य व्यवहार करने वालोंकी न चलनेदें, पीछेसे आयाहुआ मनुष्य आगु आनेसे व्याख्यानमे त्रुटीआना संभव है इस लिये पीछेसे आनेवाला पीछेसे चुपचाप बेठ जावेतो कोइ अयोग्य नही। जिस लिये आगे बेठनेकी होस होतो वह सबसे प्रथम आकर क्यों न बेठजावें! यदि कोई असभ्य व्यक्ति इस नियमका भंग करना चहावेतो अध्यक्षको शासन करनेका बराबर अधिकार है।

(ख) का मतलब यह है कि बहुत दिनों सें अपने प्रेमीकी मुलाकात होनेसें देखनेके साथ मन उससे बात करनेकी प्रेरणा करताहै इससे वहव्यक्ति सहसा व्याख्यानकी ओर दुर्लक्ष करके अपने प्रेमीसे बातचीत (गुफ्तगु) करना प्रारंभ करदेताहैं और इससे

व्याख्यान सभामें हीनी पहुचती है वक्ता और श्रोताओंका मन च लाय मान हुवे विना नही रहसकता इससे श्रोताओंको उचितहै कि चाहे वेसा प्रेमी क्यों न दीखजाय किन्तु उक्त स्थानपर बेठेहुवे श्रोताने राग भावकी परणतीको अवश्य रोकना जब उतने देरके लिये जिससें मोह नही जीता जा सकेगा वह कैसा मोक्षकी सामग्री मिला सकता है? और उसे व्याख्यान सुननेमें लाभही क्या हुआ? प्रेमी फिर मिल सकता है किन्तु उपदेश सुननेका अवसर हर समय नही मिल्ता।

(घ) का मतलब यह है कि–मारवाड–गुजरात प्रभृति देशोंमें उपाश्रय (व्याख्यान शाला) के स्थंभ श्रावकोंने बाट रक्खे है। अमुक स्थंभके समीप अमुक अमुक ज्ञातीका या अमुक घरानेके मनुष्यहीको व्याख्यानमें बेठनेका अधिकार है अथवा अमुक शठ– जहातक न आवे तहातक चाहे सभी श्रोता क्या न बेंठ हुवेहो परतु–उनके आने विना वक्ता व्याख्यान न करनेवाल! क्या यह अन्याय नही है! क्या उपदेशक उनके तावेदार हे? कितनी दुखकी बात है। ऐसे स्थानोंमें एसेही स्वार्थी धर्महीन वक्ता और एसेही अभिमानी मुर्ख अविचारी श्रोता। सत्योपदेशकोंको चाहियेकि एसे शहरोंमें उपदेश करनेका यदि अवसर आवेतो अभिमानीयोंका अ- भिमान न चलदें और उक्त नियमोंका पालन करनेका प्रयत्न करें सत्यकी जड वहुत है यदि अन्यायके पक्षपाति वहुत मिलेगें तो सत्य वातके ग्राहीभी थोडे वहुत अवश्य होही जायगे। एसे दुराग्रही स्थानोंमें अभिमानीयोकी परवाह न कर निस्पृहतापूर्वक उपदेश दियाजाय तभी सत्योपदेश प्रणालीका पुनं जीवन होगा। और तभी अभिमानीयोंका वल दिनों दिन घटे। हमने हमारी आ खोंसें यह घटना देखीहैकि कई दुराग्रही जान बुझकर परिषदको

चूर आगु आकर वेठते है एसे समयमे प्रत्यक्ष सत्यदर्शी होतो वह कभी यह अन्याय सहन नहीं कर सकता ओर तुरत उसका मान मर्दन करदेताहै किन्तु कदाग्रहीभी अपनी हठीली पद्धतीको नछोड सामने बोल्ते हमने देखाहै। बलके यहातक वे गरुर वाक्योंका उचार करतेहै कि जिनको लिखनेको लेखनी कॉपती है तथापि दोचार वाक्य नमुनेकी तौर पाठकोको सुना देतेहें सुनिये! उनकी मधुर वानी! गुरुजीको वे दुराग्रही उत्तरमें यह कहते है ' महाराज ' अमुक स्थानपर कदीभी वेठनेकी हमारी स्थान है। आप तो इस वर्षमें यहा आये है किन्तु आप सरीखे कई आगये आपको वाचना होतो वाचे? नहीं तो आपके भाई वाचने वाले बहुत मिलेगे! " वा यों कहदेतेह " इनके व्याख्यानमें हम नहीं आवेगे " देखीये उनके अन्याय भरे वाक्य! क्या न आवेगेतो उपदेशकी कुछहानी है? ओर आनेसे क्या वक्ताको लाभहै? हमारी समजसेतो एसे दुराग्रही न आवेतो अत्युतम बात है। वे आकरभी कौनसा प्रकाश करने वाले है! यदि सत्यता पूर्वक देखा जायतो गुरु आज्ञा पालन करनेमें क्या नगरशेठ पणा चला जाताहै? क्या छोटी होजाता है? क्या पीछे वेठनेसे वा अन्यस्थान वेठनेसे उपदेश नहीं सुननेमें आसकता! क्या वे पीछे वेठनेमें धनवानके दरिद्री होजाते है! नहीं किन्तु बात यह है कि हमारा प्रभाव सबपर गीरना, हमारा कहा सबने मान्य करना। बस इसी अभिमान के वश ये अन्याय और अनीति करते है।

भरतचक्रवर्ति सरीखे बडे २ राजा महाराजा तीर्थंकरोकी वाणीके सामने तानतोड मानमोड विनय पूर्वक योग्य स्थानपरही वेठतेथे। एसे चक्रवर्ती ऋद्धिपात्रोंकोभी यह अभिमान नथा कि न दुराग्रहथा कि हम आगुही वेठे। तीन खडके राजा अर्ध

चक्री-श्री कृष्ण वासुदेव सरीखे पुण्यवानोंकोभी यह गवरी नहीथी वे अरिष्ट नेमी भगवानकी सभामें अर्धचक्रीका अभिमान त्यागकर बेठतेथे ओर नेमीश्वर प्रभुका बराबर विनय रखतेथे । जहां विनय है वही अभिमानका नाश है ओर जहा अभिमान है वहांपर विनय का नाश है । आजके अल्प श्रीमानोंको अल्प परीवार वालोंको अल्प सामर्थ्य वालोंको भरतचक्रवर्ता ओर श्री कृष्ण वासुदेव आदि उत्तम पुरषोंके चरित्रोंसे बोध लेना चाहिये । जिनकी बरोबरी आज कोईभी नही सक्ता एसे महान् पुन्यधी जिनवाणी एकाग्रता पूर्वक सुनतेथे ओर विनयसेवर्ताव करतेथे ओर आजके कई तुच्छ जीव अभिमान वश दुराग्रह करते है व जैनी नही किन्तु जैना भासहै । यानी एक प्रकारके जैन नामको कलंकीत करने वालेहै । पाठक ! यदि इसमें मेरा कहना कुछ अनुचित होतो क्षमा कर ।

आजके आचार्यभी हा, मैं, ता, मिठानेवाले हो पडे है फिर धर्मकाह्रास क्यों नहो ? इस पूर्वाचार्योकी न्याय प्रियता देखते है तो यही कहना होता है कि वे सचे जैनाचार्यथे वे सत्यदशाथे । वे हमारी ओर असत्य अन्यायको बिल्कुल्ही सहन नहो करतेथ ! वे किसीका कुछ अपराध देखतेथे तो उसी समय प्रतिकार करते थे । बहुत दूरजानेकी कोइ बातनही थोडेही वर्षोका अर्शा जिन्हें हुवे हुआ है । श्रीमान् रघुनाथसिंह सूरीजी जैनाचार्यकी न्याय प्रियता-का आवलोकन पाठकोसे कराते हैं ।

विक्रम सवत् १८७१ का चातुर्मास रघुनाथसिंह सुरीजीका बीकानेर (मारवाड) मे सुराणोंके उपाश्रयमे हुआ [१] इस अर्शेम

---

१ यद्यपि-उपाश्रयपर सुराणोंकी मालकी नहीं है किन्तु उनके महोलेमें होनेमे और वे-उसी गच्छके श्रावक होनेसे-लोक-इसी तरह कहते है ।

अमरचंदजी सुराणा हाकिम बीकानेर राज्यके प्रधान पद पर नियत थे (अमरचंदजीके पूर्वज बीकानेर राज्यकी हाकीमी करते चले आये इससे आजतक उक्त घरीयाने वाले हाकिमही कहलाते हैं) अमरचंदजीको आचार्यश्रीका व्याख्यान सुननेका नियमथा । इससे वे नियमित टैमपर आजाया करतेथे । एक दिन किसीएक राजकीय विशेषकार्य वश नियमित समयपर नही आसकने पाये । इधर आचार्यजीने तो अपनी नियमित टैमपर हमेशाहकी तरह व्याख्यान प्रारंभ करादिया और सारीसभा आनंद पूर्वक सुनने लगी । थोडेही देरके पश्चात् सुराणाजी आपहुचे । उस समय कर्मवश अभिमानने आकर घेरा और अमरचंदजी आचार्यश्रीसे कहने लगे कि "मेरे आये बीना आपने व्याख्यान कैसा प्रारंभ करदिया ? खैर अबभी आप आगुसे ख्याल रखना ! " आचार्यश्रीने तुरत उत्तरदिया मैं जिनेंद्रोंकी आज्ञाकी और देखु या तुमारी और ? तुम श्रीमान् बीकानेर नरेशके प्रधान पदपर हैं तो क्याहुआ धर्मकार्यमें सब व्यक्ति बराबर हैं । जिनको आदसे अन्त तक सुननेका प्रेमहोगा वह स्वतएव नियमित समयपर आकर उपस्थित होगा । इस घटनके थोडेही दिनोके पश्चात् चातुरमास उतर जानेपर आचार्यश्रीने बीकानेरमें रहना योग्य नही समझा और झट विहार कर देशणोक ग्रामको पधारगये ततः पश्चात् हाकिम सहाबको इस बातका बहुतकुछ पश्चाताप हुआ, और आचार्यश्रीको पीछा बीकानेर लानेका उत्कट विचार हुआ किन्तु इस घटनाके थोडेही दिनोंके बाद पूर्वकृत दुष्कर्मवश राजकीय अपराधमें श्री बीकानेर नरेशके दोषी ठहरकर प्राण दण्डके अधिकारी उक्त हाकिम सहाबको होनापडा । यदि थोडेदिन उनका धर्मायतन (शरीर) इस संसारमें रहता तो वे अवश्यमेव आचार्य श्रीको पीछा बीकानेरको अपनि नियमानतामें लाते। सुराणाजी बडेही

धर्मग्र मजूरथे किन्तु कमाने किसीको माफि नहींदी यह बात मैंने मेरे गुरु वर्यश्री केवलचन्द्रजी गणि महाराजके श्रीमुखसें सुनी हुईहै। यदि इसमें कुछ मत भेदहो तो पाठक क्षमा करें। इस दृष्टान्तको यहांपर देनेका मतलब यह है कि-हमारे पूर्वज बडेही निस्पृही थे। धर्मकोही वे सबसे उत्तम व सबसे अधिक समझतेथे-इस कथापरसे हमारे वर्तमानके आचार्य उपाध्याय-वक्ता यति-मुनियोंने बोध लेना चाहिये व निस्पृहता पूर्वक-उपदेश करना चाहिये। धार्मिक सत्ताका लोप होने देना न चाहिये। जिन २ स्थानोंमें नगर सेठ या ज्ञानिसेठ प्रभृतिका बेठकके लिए मतभेदहो ऐसे स्थानोंमें वक्ताओंने इस भेदको दूरकरनेका प्रयत्न चलाना चाहिये। और समझनेपर श्रोतावर्ग न समझें तो ऐसे दुराग्रहीयोंको उपदेश बिलकुलही नही सुनाना चाहिये। यदि कोई यहांपर यह दलील पेशकरे कि राजा महाराजाओंकी सभाओंमेंभी हरएक व्यक्तिके लिये स्थान नियत रहता है ऐसेही व्याख्यान सभामें नियत रहेतो क्या हानी है? तो इसके उत्तरमें निदितहो साधुओंमें आचार्य, उपाध्याय, स्थविर गणि मुनिआदि जो रहते है वे यदि व्याख्यानमें आकर बेठना चहावेतो उसी रीतिसे बेठ सकते हैं जैसा राज सभामें राजकर्मचारियोंके लिये वा भाई बेटाके किले यह योजना होती है एसी आचार्य उपाध्यायोंके लिये रहती है किंतु जैसा राजसभामें रेयतके लिये एसी योजना नही रहती इसी रीतिसे व्याख्यान सभामें श्रोतावर्ग के लिये एसी योजना करनेसे अनवस्था होनेका कारण है। श्रावक वर्ग धार्मिक दृष्टया आचार्य-उपाध्याय-साधुओंकी रैयत है। और शास्त्रोंमेंभी श्रमणोपासक कहें है। दुसरी बात यह है कि व्याख्यान सभा धार्मिक है इस लिये इसका विचार धर्म दृष्टिसेही करना चाहिये। आगे पीछेका वाद लाना केवल अनताका सूचक है। धर्म

दृष्टिसे देखाजायतो पीछेसे आगु आकर बेठना एकके उपरसे दुसरेनें उल्लंघन करआना–अनुचित है इसलिये चाहे छोटा हो या मोटा, नोकर हो या मालिक, चाहे श्रीमान् हो वा गरीब, चाहे किसी समाजका अग्रणी हो वा सामान्य, व्यक्तिहो सभी श्रोता परस्पर समानभाव रखकर धर्म्मोपदेश सुननेसे बोधबीजकी प्राप्ति और समाजकी उन्नतिका कारण है ॥ ८ ॥

६–श्रोताः–आपने जो छठ्ठे नियममें यह जो दर्शाया है कि महत्व कार्य वशभी–संकेत द्वारा वा शब्द द्वारा अपने घरके नोकर प्रभृति व्याख्यानमे खबर नदें–इस कलमके अंतर्गत जो नियम दर्शायें है–उसमे मुझे कुछ शंका नहीं है किन्तु महत्वका कार्य आनेसे "विशेषो बलवान भवेत्" इस न्यायके अनुसार–कार्यकी ओर लक्षभी दियाजाय तो क्या दोषहै ?

वक्ता'–धर्मी जीवोंके लिये धर्मसे बढकर कोइ विशेषकार्य होही नही सकता, अतएव धर्माभिलाषीयोंने हमेशाह–धर्मकार्यको विशेष, और संसारीक कार्यको सामान्य समझकर ही वर्ताव करना अच्छा है। विचार पूर्वक देखाजाय तो धर्ममें दृढ रहनेसें बीगडाहुआ कार्यभी धर्म प्रभावसे सुधर जाता है और यदि कोइ कार्य वीगडने वालाही हुआतो चाहे व्याख्यानके वीचमेंसे उठे ! वा लाख प्रयत्न करें वहतो बिगडेगाही अथात् कभी नहीं सुधर सकता और सुधरनेवाला कार्य हुआ चाहे कुछभी प्रयत्न मतकरो वह अवश्य सुधरेगा यह अटल सिद्धांत है अतएव सिद्धहुआ कि महत्व कार्य आनेपरभी शुद्ध श्रद्धावानोंनें धर्मसे चलायमान नहीं होना। जो लोक दिखाउ श्रद्धावाले जैनी है। उनके "द्वि विधामें दोनों गये–माया मिली न राम!" इस लोकोक्ति अनुसार–न उनको व्याख्यानका आनंद आता है और न ऐसे भाग्यहीनोंका कार्य सुधरता! वे हमेशाही मिश्रभाव

वश संसार परिभ्रमण करतेही रहगे। और वारवार पश्चाताप होनेका मोका आताही रहेगा। महान्पुरुषोंके वचन है कि–धर्मको दृढता और निश्चय पूर्वक आराधन करने वालोंके संसारी कार्योंकी फलनिष्पति–स्वतएव अच्छी होती है। जिनकी धर्मपर श्रद्धानहीं है ऐसे–अधर्मी नास्तिक–लोगोंके लिये कोई बात नही ॥ ६ ॥

श्रोता.–अपने सातमें नियममें श्रोताको व्याख्यानमें सामायिक करनेका मना लिखा है किन्तु–हे भगवान्! प्रस्तुत अनेक विद्वान यति–मुनियोंकी व्याख्यान सभाओंमें अनेक श्रोता करते है! उन्हे वे–यति–मुनि क्यों नही मना करते? क्या वे सभी शास्त्र विरुद्ध कार्य करते हैं? मेरी समझसे तो जैसा व्याख्यान सुनना धर्मकार्य है वैसाही सामायिक करनाभी धर्मकार्य है इससे "एकपथ दोकाज" की कहलावत मुवाफीक–व्याख्यान सुननेका व सामायिक करनेका यह दोनोंकाम आसानीसे एक साथ होजाते है। और एक यहभी लाभ है कि–सामायिक लेकर व्याख्यानमें बेठनेमे दोघडी मनका निश्चलभाव होजाताहै। सामायिक लेनेवाला शख्स उतने समयतक एकाग्रतासे धर्मसुन सकता है। गृहस्थियोंके पीछे बहुतेरे प्रपंच रहते है इससे अधिक फुरसत–यदि न भी मिलेंतो दोनों काम साथ हो जानेसें नियमभी भग न होसके व्याख्यानभी सुननेमे आजाय। उपरोक्त कारणोंके वश व्याख्यानमें सामायिक लेना अयोग्य मालुम नहीं होता यदि अयोग्य है तो आप कृपया दर्शावे इससे लोगोंकी मिथ्या समझ दुरहो?

वक्ता –उपरोक्त आपकी तर्क निर्मूल है। व्याख्यानमें सामायिक लेकर बेठना महादोषका कारण है। यदिकोइ इसका समर्थन करनेकी हौंस रखताहोतो युक्ति और शास्त्र प्रमाणोंसें सन्मुख आ जावें। व्याख्यानमें सामायिक लेकर बेठनेकी रुढी हमारे ढूंढकमित्रों

ने चलाई है ? और हम लोकोका उनसे गाढ परिचय होनेके कारण अज्ञान वश जैन सम्प्रदायके कितनेक अज्ञानियोंने उनका अनुकरण कर लिया है। व्याख्यानमें सामायिक लेकर बेठनेमें बहुत हानिया है और वह हम इस लेखमें दर्शाते है पाठक इसे विचार पूर्वक पढ़ें ?

व्याख्यानमें सामायिक लेनेकी किसी जैन शास्त्रकी आज्ञानही है। और न जैन इतिहास इस बातकी शाक्षी देता ! हमारे परमोपकारी तीर्थंकर महावीर स्वामीके समयमें चेडे राजा सरीखे दृढ धर्मी राजा, पुणीये श्रावक सरीखे सामायिक कार, आनंद कामदेव प्रभृति व्रत धारी श्रावक और इनके अतिरिक्त कई बडे २ धर्मात्मा जीन विद्यमानथे जिनकी प्रशसा वीरप्रभुने अपने मुखार विंदसे की है और जैनागम ग्रंथोंमें उक्त वृतात अभिविष्ट है किन्तु ऐसा एकभी उदाहरण नही दृष्टिगत होता कि-अमुक श्रावक सामायिक लेकर अमुक जैन धर्माचार्यकी सभामें बेठाथा ? इससे हम धैर्यता पूर्वक कहसकते है कि यह रसम आधुनिक है और इसको जन्मदेने वाले ढूंढक मिर्ग्रह यह हमारा अनुमान वहातक ठीक होसकता है कि जहातक-इसके विरुद्धमें प्रमाण न मिले। क्या वीर प्रभुके समका लिनके श्रोताओंको एक पथ दो काज करना नही आताथा ? अथवा उनको गृहकार्योंका प्रपञ्च नहीथा ! देखा जायतो आजके कृपण और तुच्छ श्रीमतोंसे बहुतकुछ अधिक गृह प्रपचथा किन्तु आजके श्रोताओंकी तरह उन्हें दोनों हार्थोसें लड्डुखानेकी आदत नहीथी !

आजके श्रोता लोक "बुभुक्षित कि द्विस्रेण भुक्ते ? " इस उक्ति अनुसार व्याख्यानमें सामायिक लेकर बेठनेवाले अपनी हामी कराते है। शिष्ट एव बुद्धिवान् लोक नियमानुकूलही सबकार्य करते है। आजकलके श्रोता बहुधा यहभी नही जानते कि नियम क्या चीज

है ! इसीलिये उन्हें समझाना कठीन पडताहै ! और यही बडी दुखकी बात है।

व्याख्यानसभा श्रोतावर्गको जैन तत्वज्ञान समझानेकी एक संस्थाहै। इस संस्थाका उद्देश्य जैनधर्मके सिद्धांतोंको मनुष्योंके हृदयोंमें दृढकरनेका एव फेलानेका है। इस संस्थाकि स्थापना अनतकालसे सर्वज्ञोंद्वारा हुई हुई है। इस संस्थाका प्रधानकार्य उपदेश मानागया है उपदेशक स्थानमें सामायिक प्रभृति क्रियाएं करना युक्ति प्रमाणोंसे विरुद्ध है। व्याख्यानमें सामायिक लेनेसे यह आपत्ति आती है कि-इधरतो वक्ताके मुखसे शास्त्र वाक्योंका उचार होरहा और इधर सामायिक करने वाले श्रोता-ईर्यापथिकी सामायिक दण्डक आदि सूत्रोंको गुणगुण करनेके प्रपञ्चमें लगते हैं इससे सामायिक करनेवालेका सूत्र उच्चारण कालतक उपदेशकी ओर अवश्यही दुर्लक्ष हुवेविना नहीं रहसकता। और दुसरी बात यहहोगी कि-उपस्थित अन्य श्रोताओंमेंसे कई श्रोताअका मन उपदेष्टाकी वाणीकी और जावेगा और कईयाका मन सामायिक कारकी क्रिया व बडबडाट और झुक जावेगा इससे व्यवस्थामें परिवर्तन होनेसे अनवस्था दोष प्राप्तहुआ। विचार पूर्वक देखाजाय तो तीर्थंकर गणधरोंके सिद्धान्तोंकी और सामायिकके बहाने श्रोताओंका दुर्लक्ष होना यह अनीति अन्याय नही है तो और क्याहै ? व्याख्यानम सामायिक करने वालोंको न सामायिक करनेका फल मिलता है और न व्याख्यान सुननेका फल प्राप्तहोता। सचपुछो तो उतनी देरके लिये एक चित्तसे शास्त्रका श्रवणही करना मानो सची सामायिक करना है। यदि यहाकोइ यह प्रश्नकरे कि, व्याख्यान प्रारंभ होनेके पहले मही सामायिक लेकर बेठजानेसे व्याख्यानके बीचमें सामायिक लेनेके सूत्रोंका उचार होनेका कारणही नही रहता ! तो-उत्तर

मालुम हो–आगु लेकर बेठनेसे यह दोप आता हे-कि–दो घडी पूरी होनेमे व्याख्यानके बीचमें सामायिक पारने (समाप्त करने) के सूत्रोंका बडबडाट अवश्यही होगा और जिस प्रकार लेते दुर्लक्ष हो-नेका कारण है इसी प्रकार पारते दुर्लक्ष होगा ! व्याख्यान घटे दो घटेभी बच सकता है और सामायिक काल ४८ मिनिटसे न्यूनाधिक होही नही सकता ! इसे वही आपत्ति यहापर आगई ! दुसरी वात यहहै कि कुछ श्रोता एकनही है कई श्रोता प्रथम आकर सामायिक लेकर बेठ जावेगे, कई–व्याख्यान प्रारंभ कालमें–लेलेवे और कई बीचमें लेलेवे तो कोई उन्हे रोक सकताहे ? इससेतो सबसे सरल मार्ग यही है कि–व्याख्यानमें सामायिक सर्वथा नही लेनाही अच्छा है। जिस उद्देश्यसे श्रोता व्याख्यान सभामे आता है उसको त्याग सामायिक प्रभृति क्रियाएँ करते बेठना मानो एक प्रकारका–आनेके उद्देश्यपर कुल्हाडा मारना है। कई स्थानोंमें वक्ताओंपर श्रोता लोक ऐसा जुलम गुजारते हमने सुनाहै कि–वक्ता–वक्तृत्व करते बीचमें–सामायिक लेनेवालेको वक्ताने सामायिक दण्ड उच्चार करवानाही होताहै। यदि यहवात सत्यहै तो यह अन्याय नही है तो और क्या है ? उन अकलके दुश्मनोंको इतना नही दीखता कि वक्ता–वक्तृत्व देनेको बेठा हुआहै या सामायिक दण्ड उच्चार करवानेको !

आजकल श्रावगवर्गमें बहुधा–न्यायप्रिय व शुद्ध श्रद्धावान् श्रावगोंका अभावसाही दीखता है, स्वार्थमें धर्म माननेवाले श्रावगोंकी इस कालमें भरमारहै। सद्विचारोंको त्याग करके बेठे नहो ऐसे प्रतिकूल विचारोंने उनके हृदयोंमें स्थान जमालिया-है। इससे जैनोन्नत्ति होनेमें आपत्ति आती है। जैन शास्त्रोंमें अनेक स्थानोपर स्पष्ट वर्णन है कि–" अमुक जैनाचार्य आनेपर अमुक नग॰ [illegible]–सेठ–गथापति प्रभृति सपरीवार सहीत

न्हेव पूजन कर अच्छे-शुद्ध वस्त्र आभूषण पहरकर कल्पवृक्षकी तरह पश्चात् सुशोभित होकर गुरुको वदन करनेको और-गुरु मुखसे धर्म सुननेका अथात् व्याख्यान सुननेको जातेहुवे और गुरुको वंदनकर सभामें उचित स्थानपर बेठतेहुवे " इत्यादि-इससेभी स्पष्ट है कि व्याख्यान सभामें श्रोताआने कल्पवृक्षकी तोरपर वस्त्र भूषणादि शृंगार सहित व्याख्यान सभामे बेठना युक्त है किन्तु शुष्क काष्टकी तोरपर आभरणादि उतारकर व्याख्यानमें बेठना यही नहीं लिखा! इससेभी देखाजायतो सामायिक लेकर बेठना अयोग्य है क्षणभरके लिये मानलो की सामायिक लेकर ही व्याख्यानमें बेठना अच्छा है तो फिर यहा यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा कौन मूर्ख है कि विना सामायिक कोई बेठेगा ? अथात् इससे तो सर्वोने व्याख्यानमें सामायिक लेकर बेठना साबित हुआ ! और सामायिक लेकर बेठे-श्रावकको यावत् काल पर्यंत साधुतुल्य मानाहुआ है इससे वक्तामें और श्रोतामें न्युनाधिकताका नष्ट होगया, और ऐसा होनेसे पूज्य-पूजक-भाव-और सेव्य-सेवक भावका अभावही होगया। यदि कहाजाय सभी श्रोताने सामायिक नहीं करना तो यह पंक्ति मपश्चहुआ ! इससे तो व्याख्यानमें सामायिक नहीं करनाही-सिद्ध होता है।

शास्त्रमें देश विरति सामायिक करनेका काल ब्राह्मी मुहूर्त अथात् चार-या-दो घडी पीछेली रात्रीको करनेका कहाहुआ है। यदि एकान्त स्थान मिलनेपर अन्य समयपरभी मना नहीं है किन्तु स्थान एकान्त हो वहापर बेठके सामायिक करना कहाहै ! ऐसा स्थान निरुपद्रवी चाहिये कि-जहापर सामायिक करनेसे-मन, वचन और कायाके बत्तीस दूषणोंमेंसे दूषण न लग सके ! सामायिक एक प्रकारका ध्यान है-और ध्यान अनेक लोकोके बीचमें होना सर्वथा असंभव है। कहाहै कि —

" एकध्यान-उभौपाठ त्रिभिः गान च तुष्पथ " यह श्लोकभ यही कहरहाहै कि ध्यान अकेलाही कर सकता है। इसके बदा दुराग्रही-मूर्ख-लोक जहांपर अनेक लोगोका आना जाना है, जहांप शृंगारादिनवरसोका प्रसगवश उहा पोह और भरत बाहुबली अथव राम रावण वा कौरव पाडवोके युद्धका वर्णन होरहाहै। ऐसे स्थानां सामायिक करते हैं क्या वहापर मन वच कायाका एकत्र योग होस कता है? अथवा वहांपर बत्तिस दोष रहित सामायिक हो सकती ऐसा कौन मनुष्य है कि युद्धका वर्णन सुनकर जिसको परिणाम रागद्वेषकी परिणती न हो! ऐसा कोन माइ है कि-नायक नायिकाव भेदोका शृंगार रसात्मक वर्णन सुननेपर मनको चचल वृत्तिसें हटाले! और व्याख्यानमे तो प्रसगवश सभी रस आते है इससें वहांपर सा- मायिक करनेवाला " अतोभ्रष्टा ततोभ्रष्टा " इस न्यायसें सामायि- कसेंभी भ्रष्ट हुआ और व्याख्यानभी न सुनसका, इससें यह सिद्ध हुआ कि व्याख्यान समयपर सामायिक करनेसे शुद्ध सामायिक नही होसकती! कइ लोक दुराग्रह वश यह दलील करते है कि " सामायिक लिये विना व्याख्यानमें बेठनेसे किसी समय महत्व कार्यवश व्याख्यानके बीचमेंसे उठनेका मोका आजाता है और सा- मायिक लेनेसे दोघटीका मात्रकेलिये चाहे वैसा कार्यहो मनुष्य फिर उठ नहीसकता? यह बडा लाभहै "इस दलीको खण्डनार्थ जब यह पुछाजाता है कि-यदि कोइ सामायिक लेलिये बादभी उठना चाहे तो उठसकता है या नही? यदि कहोगे उठसकता है मगर व्रत भग दोषके भयसें नही उठता अर्थात् मनही उसको यावत् काल पर्यन्त सामायिक लेनेसें बीचमें उठनेमें भय उत्पन्न करता है उत्तरमें हम कहते है जिस प्रकार सामायिकमें व्रतभंग दोषके भयसे नही उठते इस प्रकार धर्म श्रवणमें क्षति भयसे मत उठो और मनको

एकाग्र रखकर धर्म्म तत्वोंका श्रवण करो ! जिन शास्त्रोंको जिनवाणीकी श्रद्धा है यह सामायिकसेभी धर्म्म तत्वोंका गुरु मुखसे सुनना अधिक समझते है और जो स्वार्थ वश दिखाउ धर्म करतेहै वे ऐसे हजारो वहाने निकालतेही जाते है ?

जैन शास्त्रोंमें १ सम्यक्त सामायिक २-श्रुत सामायिक ३-देश विरति सामायिक और ४ सर्वविरति सामायिक इस प्रकार चारभेद कहे हैं। शुद्ध श्रद्धाका प्राप्तहोना-यह लक्षण सम्यक्त सामायिकके हैं। जिनवाणीका शुद्ध रीत्या श्रवण करना यह लक्षण श्रुत सामायिकके है, दो घटिका मात्र ससारिक कार्योको त्यागप्रमाद रहीत, आत्म ध्यान करना यह लक्षण देशविरति सामायिकके है, और यावज्जीवन पर्यन्त-ससारिक कार्योसे पराङ्मुख हो जाना और आत्म ध्यानमें लीन होना यह लक्षण सर्व विरति सामायिकके हैं। इन ४ भेदका विचार करने परसे क्या यह स्पष्ट विदित नहीं होताकी उत्तम वस्त्र धारण कर गुरु मुखसे शास्त्र श्रवण करना क्या एक प्रकारकी यह सामायिक नही है ? अर्थात् बरावर सामायिक है। जैसा देशविरति सामायिक लेकर बीचमें उठना पाप है वैसाही गुरु मुखसे शास्त्र श्रवण करनेको वेठनेपर बीचमें उठना पाप है ? क्या अधुरा उपदेश चाहिये वैसा फायदेमदहो सकता है ? जैसा देश विरति सामायिकमें मनः परिणामको एकाग्र रखना कहा है वैसाही शास्त्र श्रवणमेंभी मनको एकाग्र रखना कहा हुआ है सब जगहपर मनः परिणाम परही निर्भर है। मन चलायमान होनेपर, कर्मवश अनेक देश विरति और सर्वविरति पग्भ्रष्ट हागये इससे यह अटल सिद्धान्त हैकि मन परिणाम वश रखकर एकाग्रता पूर्वक शास्त्रोंका श्रवण करनाही परम निर्जरा है। व्याख्यानम सामायिक लेनेके असद्हेतु जो लोग दर्शाते है वे नितात निर्मूल है।

व्याख्यानमें सामायिक करनेमें यक फिर आपत्तिहै और वह यहहै कि-तिर्थंकर गणधरोंने शास्त्रोंमें कहा है कि-एक समयमें दो क्रिया नहीं होसकती ! और व्याख्यानमें सामायिक लेकर बेठनेवालोंने एक समयमें दो क्रिया करनेका प्रयत्न किया अथात् व्याख्यानभी सुनना और सामायिकभी करलेना इससे व्याख्यानमे सामायिक करनेवाले भगवान्के वचनोंके उत्थापक हुवे अर्थात् निन्हव कहदेवे तोभी कोइ गैर नही ! व्याख्यानमे सामायिक लेकर बेठनेका दुराग्रह बहुतसे भद्र श्रोताओंको है किन्तु शास्त्रवलोकन से तो यही विन्हिहोता हैकि वे जिन आज्ञाके विराधक एव निन्हवहैं। बहुधा धर्म काममें लालच करने वाल्हेही व्याख्यानमें सामायिक करना पसद करते है। श्राद्ध निधि, दिनकृत्य, श्रावककी करनी वगैरहमें सामायिकका काल ब्राह्मी मुहूर्त याने पीछली चारघटीका रात्रीबाकी रहे उस समय सामायिक करना कहाहै। उस समय एकान्त स्थानमें बेठकर मन वचन कायाके योगको एकी करण करके समता गुण (याने सामायिक) युक्त होना कहा है। यदि समय अनुकूल मिल जायतो अन्यान्य सगय परभी करसकते है किन्तु एकान्त स्थानके विना सामायिक करना सर्वथा अयुक्तहै।

कई स्थानोंमें यह कुप्रथा पडीहुई है कि-श्रावकवर्ग धर्म कार्यकरनेमें परस्पर शर्ते करते है याने अमुक मनुष्य इतने उपवास न करसके वा इतने स्तवन न बोलसके वा अमुक निर्दिष्ट कार्य न करसके तो इसके बदले (दड) मे इतनी सामायिक करें-इस प्रकार शर्त करनेसे किसी समय एक २ व्यक्तिपर सुमार हजार दोहजार या पांचहजार सामायिक वर्षभरमें करनेका कर्जा होजाता है और वह कर्जा उतारनेमें बडाही कष्ट होताहै अथात् रोजकी पचरा सामायिकके करीबहो जब वह कर्जा उतरें ! क्या कोई रोजकी १५ सामायिक करें सके

ताहै ? इससे कह सकते है कि-क्या यह धर्म कृत्य हुआ ? क्या ऐसा करने वालोंने सामायिककी क्रियाको कह सकते है ? ऐसा सामायिकाएं करनेमें केवल रूढीके अतिरिक्त धर्मका लेशभी नही समझते ? और न कहीं ऐसी तरह करनेकी शास्त्र आज्ञा दीख पडती यदि सामायिक शब्दका अक्षरार्थ समझतेहो तो सामायिककी ऐसी दुर्दशा न करें, सामायिकका तात्पर्य-समता, समपरिणाम, रागद्वेषकी परिणतीका अभाव, मनकी चचला वृत्तिका त्याग, माद्य बुद्धि द्वारा सद् वस्तुका विचार, आर्तरौद्र ध्यानका परित्याग ऐसी दशामें बैठे हुवे जीवात्माको सामायिक गुण युक्त कहां है।

यद्यपि श्रावकको सामायिक करना आवश्यकीय कार्य है तथापि व्याख्यानमें सामायिक करना कभी युक्ति युक्त नही हो सकता। जिस व्यक्तिको सामायिक करनाहो तो एकान्त स्थानमें बैठ कर करें। व्याख्यान समय श्रुतका आदर पूजन व श्रुतभक्ति और शास्त्रवक्ता गुरुकी भक्ति इत्यादि कार्य करनेकी शास्त्र आज्ञा है जो लोक-शास्त्रवक्ता गुरुकी और शास्त्रकी भक्तिके बदलेमें-अवज्ञा-धीठाई-हठ-दुराग्रह-कुतर्क वगेरा करते है वे अवश्यमेव ज्ञानीयोंके ज्ञानमें व प्रत्यक्षमें दोषीही समझे जाते है। धर्म श्रवणकी कोटी सब कृत्योंसे उची है कहा है.—

श्रुत्वा धर्म विजानाति-श्रुत्वात्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वाज्ञान मवाप्नोति, श्रुत्वा मोक्ष मवाप्नुयात् ॥ १॥

अर्थ -मनुष्य शास्त्रको सुनकर धर्मको जानता है और शास्त्र सुनकर दुर्बुद्धिको छोडताहै, शास्त्र सुनकर ज्ञान पाता है, और शास्त्र सुनकरही मोक्ष पाता है।

ऐसाही किसी भाषा कविने एक दुहाभी कहाहैः-

शास्त्र सुनें जानत धरम, जियकी दुर्गति जाय ।
होत श्रवन तें ज्ञान हिय, श्रवन मुक्तिपद दाय ॥ १ ॥

मुक्तरूप महलको पहुचनेकी इच्छा करनेवाला सत्योपदेश श्रवरूप सोवानका उल्लघन किये बिना मोक्षको नही पहुच सकता। जिस व्यक्तिने सम्यक प्रकार शास्त्रोंका परिशीलन वा श्रवण नही किया, शास्त्र रहस्यका न समझा, उस व्यक्तिके सामायिकादि सर्व क्रियाएँ पूर्ण फलदायनी नही होसकती अथात् निष्फलही है। जिस व्यक्तिके धर्म तत्वोंका श्रवण-मनन सम्यक रीत्याहुआ हुवाहै और श्रवण मननद्वारा शास्त्रवाक्य पुष्प जिसके हृदयरूप आराम (बगीचे) में प्रफुल्लित हुवे खुलेहुवे है। उस व्यक्तिको अल्प क्रियाभी महान् फलदायिनी हो सकती है। सम्यक ज्ञानविना सम्यग् क्रिया नहीहो सकती और श्रवण मननविना सम्यक ज्ञानकी प्राप्तिहोना कठीन है इस लिये जिज्ञासुओंको धर्म श्रवण करनाही श्रेय पदहै। उपदेश श्रवण विना धर्मप्राप्ति होना दुसाध्य है। कई लोक-सामायिक और जिनपुजनको व्याख्यान श्रवणसे अधिक समझकर दुर्लक्ष करते हैं किन्तु शास्त्र श्रवणकी कोटीको एकभी अन्य क्रीयानही पहुच सकती सामायिक-देवपुजन-फिरभी होसकती है किन्तु शास्त्रका श्रवणका योग हरसमय नही मिलसकता। जिन्होंने शास्त्रोंको अच्छी रीति पूर्वक सुने होंगे वही जिन पूजाका उत्तम फल प्राप्त करसकते हैं अतएव सिद्धहुआ शास्त्र श्रवण करना प्रधान कार्य है। जो धर्म, जो समाज, जो जाती, अपनी उन्नति करनीचाहे वह उपदेश श्रद्धा पूर्वक सुनें। और वक्ताके मुखद्वारा प्रकटहुवे आप्त वाक्य उनपर लक्षदें। गुरु मुखसे शास्त्र श्रवण करना सब क्रियाओंसे अधिक है।

श्रीयुत संविज्ञ मुनि चारित्रविजयजीकाभी मत व्याख्यानमें सामायिक करनेमें विरुद्ध है यह उनके पत्रमे विदित होता है इस

यहांपर उनका एक पत्र उद्धृत करते है । " सु श्रावक-सा-कार नदास प्रेमजी सु० वर्धा-तमारो पत्र पहोंच्यों वाची हकीकत जाणी व्याख्यान वखते सामायक न थई शके-तेनो भगवती सूत्रमां निषेध करेलो छें केमके तेमा ज्लेलो छे के व्याख्यान सांभळता सांभळनारने-सपरायनी क्रिया एटले कषायनी क्रिया लागेछे तेने माटे हु पोन एक दाखलो लखुछु तेथी तमो पोते समजी सकशो-

धारोके रामचरित्र वचाता होय तेवखते रावण अने रामचद्रजी नी लडाइना प्रसगे सांभळनाराओंना कुदरती रीते वे भाग पडीजाय छे-केटलाएक रावणना जैमां राजी थायछे केटलाक रामचद्रजी जैमां राजी थाय छे तेथी रागद्वेषनी वृद्धि थाय ए स्वाभाविक छे तेमज व्याख्यानमा दरेक रसनो पोषण थाय छे अने श्रोताए तद्रूप थनवुज जोइये तो ते क्रिया सामायकनी नथी-सामायकमा मात्र समभाव पेदा करवानो आटलाथी तमो पोते सेज समजी शकशो के व्याख्यानमा सामायक करवी उचित नथी-धर्मशासन करशो ।

ता. ४-८-०० बुधवार बवइ-माडवी	}	लि मुनि चारित्र विजयजीना धर्म लाभ वाचवा

उपरोक्त पत्रमभी उक्त मुनिश्री व्याख्यानमें सामायक करनेका मना लिखाहै । अब पाठक विचार करलेंगें ।

सामायिक व्याख्यानमें नही करनेके प्रमाण उपर देचूके यदि इसपर कोइ कुछ लिखेगातो विचार किया जायगा ॥ ७ ॥

८ श्रोता-हे भगवन ! लडके बचेतो माय सभी ससारीयोंक दुआही करते हैं फिर उनको व्याख्यानमे आते कहां छोडआना ।

वक्ताः-प्रतिक्रमण, सामायिक, और, देवपूजनादि कार्योको करनेको मन्दिर-उपाश्रयमें जाते वक्त लडके बचे कहा छोडकर जाया-करते हो ! यदि कहाजाय इनकामोंमें तो छोडके, न जावे तो रोवे, मलमूत्रकरें, खेलें-कुदें इससे प्रति क्रमणादि धर्मकार्योमें हानी पहुचे अर्थात् करने नदें । तो इसीतरह व्याख्यानमेंभी लडके-बचे विघ्न करते है-श्रोताओंको धर्म्म शास्त्र सुननेमें अतराय पहुचाते है और शास्त्र वक्ताका मनभी उक्त विघ्नोंके कारण चचल भावको प्राप्त हो जानेसे विषय सकल्पनामें परिवर्तनहुवे विना नही रहता । जो जीवात्मा जिस पदार्थके रहस्यसे वञ्चितहै वह-तिसपदार्थसे आनद प्राप्त नही करसकता अर्थात्-अज्ञान बालक व्याख्यानका रहस्यही नही जानते उनको लानेसे क्या लाभ ? लाभतो कुछभी नही किन्तु हानी अवश्यही होती है, खेलना, कुदना-रोना-मल-मूत्र प्रभृति अस्वच्छता करना, वगेरा बालककी स्वभाविकी क्रियाए हुआ करती है और उक्त क्रियाए व्याख्यान सभामे होनेसे-श्रोता और वक्ता अर्थात् सारी सभाका जिनवाणी परसे दिलहटकर बालककी उक्त क्रियायों के ओर झुकजाता है इससे श्रोता और वक्ताके विचार श्रेणीमें बडी भारी हानी पहुचाती है ? क्या इसमें बाल बचाओंके माता पिता-ओंका दोषनही है ? वल्के जिन बालकोंके माता पिता अधर्मी-अज्ञानि-मूर्ख है वही ऐसा अन्याय-व-घोर पापका काम करते है व्याख्यान सभामें लडकोंका खेल कुद होनेसे क्या वह सभा कही जा सकती है ? कहाहै कि-

युक्तं सभाया खलु मर्कटानां शाखा स्तरूणां मृदु-लास नानि । सुभावितं चीत्कृतिरातिथेयी-दन्तैर्नखा-ग्रैश्चवि पाटनानि ॥

अर्थः—बदरोंकी सभामें वृक्षोंकी शाखाओंकेही मृदुल आसन सीत्का रहीके सुभाषित और दंतों और नखोंसे काटनेहीके अतिथिसत्कार काहोना उचित हैं।

याने अविचारी मनुष्य बंदरोंकी और जो चहाते हैं, करतेंहैं-न बैठनेके स्थानमे बैठते हैं न कहनेकी बात कहते हैं और न करनेका कार्य करते हैं। आज कलके व्याख्यान कथाश्रमे प्राय, व्यवहार श्रावकोंकी औरसें–इस काव्यक कथनानुसार ही होता हैं अत एव ऐसी सभाकों व्याख्यान सभा न कह कर एक प्रकारकी मर्कटों (बंदरो) की सभा कह दें तो अनुचित न होगा। धर्म कार्यमें संसारी कामोंका और सब जीवोंका मोह छोडकर धर्म करो एसी धर्म शास्त्रोकी आज्ञा होनेपरभी जो दुराग्रही व्याख्यान सभामें अपने बालबचोंकों साथ लाते है उनका प्यार करते हैं उनको जोदमें लेकर बैठते हैं, उनके-खेल आदि क्रीयाएँ देख खुश होते है उनकों –हम–अधर्मी–वा–दुराग्रही समझ धर्म दृष्टिसे–उनकी आत्माकों धिकार न दे तो क्या धन्यवाद दें? यति–मुनिओनें प्राय स्वार्थवश तथा वाह वाह (प्रशंसा) करवाने मही कर्तव्यका पालन करना मानकर मौनावलम्बन धारण कर लिया है और गृहस्थि लोग जातीय बधनकी सरमसें अथवा व्यापारादि अन्यान्य कारणोंसे एक एकसे दबकर धर्मके लिये परस्परम चुतक नही करते इससे कुप्रथाएँ क्रमश सारे जैन समाजमें पड गई, अब कहतोभी कौन? इससे व्याख्यान सभामें असभ्य व्यवहार चलना प्रारंभ हो गया! व्याख्यानमें-लडके खेल–कूद–की धूम मचाने-परभी श्रोता और वक्ताकी वाणीने मानो स्थिरता धारण नहीं करलीहो ऐसे शून्य चित हुवे बैठे २ देखते रहते हैं किन्तु कोई यह नही कहताकि इसका प्रबध किया जाय। और जो वक्ता व्याख्यान करते है वे

यदि श्रोताओंके लडके बच्चोंकी धूमा कुलको सहन कर लेवे अर्थात् मना न करे और बदलेमें यों कहे कि "बालक है, इनका ऐसाही स्वभाव होताहै, खेलनेमे अपना क-। ले लेतेहै, हम हमारे मूहसे बाचते है, श्रोता अपने कानोंसे सुनते है. ओर छोकरे अपने शरीरसे खेलते है इसमें व्याख्यानमे क्या हरजा पहुचता है। पचमकाल है, ऐसाही चलताहै, श्रावकोंके बालक हमारेहीहै" एसे मीठे लोलने वाले अधर्म्मी, वक्ता, शातमूर्ति कहलाते हैं ओर लडके बच्चोंके मा-बाप-उनकी यहांतक तारीफ करतेहै ये महाराज बडेही गुणी है बडे क्षमावानहै। एसे क्षमाधारी आज तक नही देखे। क्योंन क्षमावान् गुणवानहो, तुमारे बाल बच्चोंको अन्याय करने परभी मना नहीं कीयातो क्षमावान् गुणवान होगये और यदि कुछ सत्यता धारण कर लेते तो क्रोधि होजाते! कोई सत्यदर्शी वक्ता बालकोंके मां बापोंसे यह समझा कर कहे कि "दखो! यह धर्म स्थानहै यहा धर्ममें अतराय आवे एसे काम न होन चाहिये लडके बच्चे रोते हे खेलते है इससे अतराय पहुचतीह इससे बेहतरहै सबको अतराय नपहुचकर एकबालकके माता पिताको ही पहुचना! तो कई स्थानोंमे हमने देखाहै वे मोह फासमें पडे एसे अयुक्त वाक्य कहने लगतेहै कि-छोकरोंको कहा छोडके आवे? क्या गुरुजीके कहेनेसे फेकदे? ससारीयो के तो लडके बच्चे होतेही हैं? हम थोडेही इन सरीखे यति-मुनि होगये है? इसके उत्तरमे गुरु फिर समझाके कहे कि मित्रों तुम ससारीहो यह बात सच किंतु राज्य कचहरीयोंमें प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंमें जैसे किसी को बाल बच्चे सुमत कर जातेहो ऐसेही यहा आना मानलो जिस घरमें बालक हो उसके घरको एक २ शरश बालकोंके लिये घरो रहजावे तो बाकीकेसभी सुव्यवस्थासे धर्म सुन सकतेहै

यदि कहा जाय उसको सुननेका प्यार नहीं है ? तो उत्तरमें विदित हो क्रमशवारी बाध लेना कि अमुक दिन अमुकने घरको रहना और अमुक दिन अमुकने और घरको रहने वालेने मनमें यह ग रहणा (पश्चाताप) करना कि हे ! जीव ? तेरे पूर्व पापोदय के वश ऐसे बाल बचे हुवे जिससे आज तुझे जिनवाणी सुननेमें अ तरीय पहुची. यदि खेल कूद वा रोना आदि क्रिया न करनेवाला पुन्यवान् लडका हमारे कुलमें जन्म धारण करताती मुझे यह जिन-वाणीकी अन्तराय क्यों उठानी पडती ! इत्यादि न्यायसे वहीं समझाने पर भी कई स्थानोंमें धर्महीन दुराग्रही श्रोता यहांतक बकवाद प्रारंभ करदेते है कि, " यहांपर बहुतसे वक्ता गुरु आगये मगर इनको सिवा हमारे बाल बचोंके लिये किसीने कुछभी नहीं कहा, क्या संसारमें यही पढे हुवे है ? क्या दुसरे गुरु नहीं बांच जानते ? क्या यही शास्त्र पढे है ? दुसरे क्या सभी मूर्ख है ? लडके बचोंके मा बापोंने क्या व्याख्यान नहीं सुनना ? इत्यादि स्वार्थमे डूबे हुवे, कठोर हृदयवाले बोल उठतेहै ! किन्तु उन अकल के दुस्मनोंको यह नही समझता कि हमारे पूर्व पापोदयसे धर्मशास्त्र सुननेमें इन लडकों द्वारा अन्तराय पहुची, यह हमारे कर्म्मोंका दोषहै । यदि ऐसा समय जाने तो वे हठभी न करे किन्तु वक्ताको दबानेका प्रयत्न करतेहै किन्तु सत्य वक्ताही कहीं दब सक्तेहै ? दुराग्रही श्रोताओंसे सत्यवक्ता कभी नहीं दबाता ! आश्चर्यहै कि स्वार्थ वश सारी सभाको अन्तराय पहुचानेमे उन दुराग्रहीयोंको सरमभी नही आती ! एसे दुराग्रही दुराग्रहको छोडते जब सत्यवक्ता नहीं देखते तो तुरत फटकार देतेहै और व्याख्यान स-भास अलग करतेहै तो वे दुराग्रही यहा तक फिर कहने लगतेहै कि क्यायह यति मुनियों के लक्षणहै ? इनके पास धर्म सुननेका क्या

कायदा क्या श्रावकको कटु शब्द रोलना साधुका धर्महै ? क्योंहो ! देखीये पाठक अन्याय ?, गुरुका व शास्त्रका अवज्ञा अनादर करने परभी वक्ता न बोले जब वे दुराग्रही शांतमूर्ति–क्षमावान्का खिताबदें । हे सर्वज्ञ–वीतराग ! इस प्रकारका खिताबकी हमें कोई अपेक्षा नही ! जो गुरु होकर शिष्योको और उपाशकोको नीति मार्गकी शिक्षा न दें वह गुरुही क्या ! आज कलके श्रावक लडके बच्चोंको व्याख्यान सभामें कपडे दागीने पहना कर जैसा नाटक, खेल तमाशे वगेरे मनोरंजन कार्योमें लेजाते इस प्रकार व्याख्यान सभामें लातेहै और व्याख्यान सभाको खेले तमाशेकी तरह समझ रक्खी है । यह अयुक्त है । उनको विचारकरना युक्त हैं कि हम यहां क्यों आते है ? गुरु के मुखसे जिनवाणी सुननेको या लडके खेलानेको ! क्या गुरुकी श्रुतकी भक्ति करनेको या गुरुको हेरान परेशान करनेको ! धर्मी जीवोंके लिये क्या बाल बच्चे धर्मसेभी प्यारे हो सकतेहै ! संसारीयोंको बाल बच्चे प्यारेही होतो खीलाने पीलाने वा दीगीने पहनानेको कोइ मना करता है ? क्या व्याख्यानमे नही लानेसें क्या बात चली जाती है ? इत्यादि विचार पूर्वक देखा जायतो व्याख्यानमें बाल बच्चे नही लाताही श्रेयस्कर है। हां, जो लडका मल मूत्र न करने सरीखा हो वा रोना खेलना रुदना आदि असभ्यता नही कहताहै और शास्त्र रहस्यको समझताहो, शांतता पूर्वक बेठ सकता हो ऐसे सुयोग्य बालक समझदारको ल्यानेकी मना नही है । धर्मी जीवोंके धर्मसे बढकर प्यारी वस्तु अन्य कोईभी नहीहै इससे धर्म कार्योमें संसार व्यवहारकी बाते लाकर सामने रखना केवल हठहै " नीति वाक्यमें कहाहै कि–" कोऽर्थ पुत्रेण जातेन योन विद्वान्न भक्तिमान् " इस जगह हम यह कहतेहै कि–कोऽर्थ श्राद्धेन जातेन–योन विद्वान्न भक्तिमान् " यांने ऐसे

पुत्र हुवेसे या शिष्य श्रावक हुवेसें क्या लाभ कि–जो विद्वानभी न हो और भक्तिवान्भी नहो अथात् विद्या भक्ति विहीन–पुत्र–शिष्य श्रमणो पासकहुआभी नहुआ समानहै । इसका तात्पर्य यह है जो लोक स्वार्थ वश शास्त्रोक्त गुरु आज्ञा मान्य नहीं करते वैसे शिष्य हुवेतोभी क्या । और न हुवे तोभी क्या ! बहेतर है वैसे न हुवेतो अच्छे ॥ ८ ॥

९ श्रोता–नवमी प्रश्नमे आपने दर्शायाहै कि–असद्य–मल मूत्र प्रभृति शंका हो आवेतो व्याख्यान के बीचमें उठ सकता है किन्तु पीछा आकर वहीं बेठनेका आग्रह नहीं कर सकता मगर बडा आदमीभी कोई हो और स्यायत आकर बेठेतो कुछ दोष है !

वक्ता–हा, बडा भारी दोष है जिनवाणीके सामने बडा छोटा कोन है ! और यह भाव रखना बहुत अनुचित है । समान दृष्टि रखना धर्ममें श्रेय मदहै । पीछेका मनुष्य आगु आनेसे सभाका मथन होताहै, व्याख्यान श्रेणीमें हानी पहुचती है इत्यादि कारणोंसे शंकाके लिये उठा मनुष्य पीछा लोटकर आगु नहीं आ सकता सर्वसें पीछे बेठकर सुन सक्ताहै यद्यपि उठकर जानेसेभी व्याख्या-नमें धक्कातो अवश्य पहुचताहै किन्तु वहवात किसीके अत्त्यारकी न होनेसें दोष नहीं है हरेक काममें इरादाही प्रधानहै ॥ ९ ॥

१० श्रोता–आपने दशमें नियममें अविनय न हो ऐसा वर्ताव रखना फरमाया सोतो सब जगह पर सब श्रोता रखतेही है फिर इसको लिखनेकी क्या ! जरूरत !

वक्ता–अज्ञान–व–मूर्खतावश–कईस्थानोंमें दुराग्रही–मदान्ध–धनान्ध–श्रोता अभिमानमें भरे विनयका स्पर्श तक नहीं करते हैं गुरुवन्दन भाष्यमें लिखाहै कि–गुरु वंदन करनेमे छ गुण प्राप्त होते

न्यमें प्रधान गुण विनयोपचारहै। जिनमें विनयही नही है उनको अन्य गुण कैसे प्राप्तहो सकते है ? कई अज्ञानी श्रावक अपने सुखीये श्रोताके आधारके लिये तकीया रखदेते हैं इस एक शहरमें व्याख्यान कर रहेथे ऐसा बनाव बना हमेंने फोरन तकीया उठवा दिया और उनको राहपर लाये, कई अज्ञानी ताम्बूल इलायची, मुखवास आदि वैलकी और चरते चरते धर्म सुननेको व्याख्यान सभामें आतेहैं यह मूर्खताहै। धर्म शास्त्रका श्रवण नियम पूर्वक करना चाहिये। कईलोक अविनय पूर्वक उल्टे गोडे डालकर बेठ जाते है, तथा लवेपार करदेते है, अथवा भीतका सहारा लेकर बेठ जाते है, पीठ देदेते है इन सब कार्योमें गुरुका और शास्त्रका अविनय होताहै इस अविनयको रोकनेको दशमा नियम रक्खा गयाहै ॥१०॥

११ श्रोताः—आपने इस नियममें शस्त्र—लट्ठी—उपानह (जूते) प्रभृति मान भग व अदब तोडने वाली चीजें न लेजाना चाहिये कहा, यहतो बहुत युक्त कहा किन्तु (क) इस शकेतसें आपने लिखा है कि दास—दासी—नोकर—चाकरको व्याख्यान सभामें नही ले जाना इसका क्या कारण ? येभी तो मनुष्यहै—धर्म श्रवण (सुनने) सें बोध बीजकी प्राप्तिहै इसमें तो मेरी समझसें दास दासी प्रभृतिको लेजाना कुठगैर नही है।

वक्ताः—जो जो श्रोता (स्त्री—पुरुष) नोकर—चाकर—दास—दासीएँ—व्याख्यानमें साथ लातेहै वे अपने गौरवके लिये व जनसमाजको ऐश्वर्यता बतलानेंको लातेहै। शास्त्र कारोने पचाभिगमन पूर्वक, मानमोड जाना कहा और दास दासीएँ नोकर चाकर लेजाना यह अभिमान सूचक चिन्हहै इसलिये नोकरोंको व्याख्यान सभाके भीतर नही लेजाना। गुरुको विधिसे वादनेसे अर्थात् गुरुके पास

विधि पूर्वक (नियमानुकूल) जानेसे छ गुणोंकी प्राप्ति होना शास्त्र फरमाता है। कहां है:-

इह छच्चगुणा विणओ–वयार माणाईभंग गुरुपूआ:।
तित्थयरायण आणा–सुअ धम्मा राहणा किरिया ॥
गुरुवंदन भाष्यगाथा २७

तात्पर्य, १ विनयोपचार, २–मानभग आथात् अभिमानको छोड़ना, ३–गुरुकी पूजा, ४–तीर्थंकरोकी आज्ञाका आराधन, ५ श्रुत धर्मके आराधना क्योंकी श्रुतज्ञान गुरु मुखसे प्राप्त होता है और ६ मोक्षप्राप्ति। उक्तछे गुण गुरु वचन करनेसे प्राप्त होते हैं और दास दासी–नोकर साथ ले जानेसे तो मानभग रया मानकी वृद्धि हुई इससे एक गुण गमा देनेका प्रयत्न हुआ अतएव अभीमान सूचक चिन्होंसें नही जाना! विचार पूर्वक देखा जायतो नोकर चाकर–दासत्वग्राही–अपने मालिक मालिकाके साथ व्याख्यान सभामें जाते हैं और उनका जानेका ओर कुछ प्रयोजन नही इसलिये वे उस समय शास्त्र श्रवणके योग्यही नही है अतएव उन्ह व्याख्यान सभाके बहारही बैठाने चाहिये। हां, जिसके अंतरगमें धर्म रुच हुआहै फिरचाहे वह दास दासी–नोकर–चाकर बगेरा कोईभीहै वहव्यक्ति उतनी देरके लिये दासत्व वृत्तिका त्याग कर मालिकमालिकासे बेपरवाह रहकर एकाग्र चितसें धर्म सुनता होतो उस व्यक्ति के लिये जाना मना नहींहै ? किन्तु हमारे मालिक–हमारी मालिकनी भीतरहै इसलिये हम भीतर जावगे ऐसको द्वारपाल सभाके भवनके भीतर न जानेदेवें न्यायसी कलमका मतलब यही है। कहा है " माणो विणय विणासओ " आथात् मान (अभिमान) विनयका नाश करने वाला है ॥ ११ ॥

१२ श्रोता:-चदा (टीप) स्वप्ने वगेरेका घृत व्याख्यानमें ही करना लिखासो यदि थोडे समयके लिये व्याख्यान वध रखकर देव द्रव्य-ज्ञान द्रव्य और गुरु द्रव्य-साधारण द्रव्यादिककी वृद्धिके अर्थ कुछ विचार करे तो क्या हर्ज है ? व्याख्यान फिर-बच सकता है आज कलके श्रोता (श्रावक) व्याख्यान पूरा हो जानेपर उठकर तुरत चले जाते है, और धर्म कार्यके लिये द्रव्य संग्रह करनेकी आवश्यकता तो रहतीहै वह उत्पन्न चले जानेसें हानी पहुचती है । आज कलके श्रावकएक एककी शर्म्माशर्मी धर्ममें धन खरचते हैं इसलिये हे मुनीन्द्र ! आपसे विनती हैं इसका क्या बंदोबस्त किया जाय ?

वक्ता:-व्याख्यानको थोडी देरके लिये वध रखकर पीछे वाचनेसें विचार श्रेणीमें फरक पडे विना नही रह सकता । इसलिये जैसा व्याख्यान वध रखकर बीचमें द्रव्य एकत्रित करनेका प्रयत्न किया जाता है तद्वत् सब लोक एकत्रित होकर व्याख्यान प्रारभ होनेके प्रथमही घृत वोल लेना, चदाटीप वगेरा जिस खातेमें द्रव्य मिलानेकी आवश्यता समझी जाय उसमे धन एकत्रित करलेना, और तदनतर व्याख्यान प्रारभ होनेसे श्रोताओकोभी किसी खातेमें द्रव्य सग्रह करनेकी फीक्र न रहनेसे निश्चल चित्तसें व्याख्यान सुन सके और वक्ताके विचार सकलनामेंभी त्रुटी आनेका सभव नही रहता तात्पर्य-धर्म कार्यमें व्यय करनेकेलिये द्रव्य एक त्रित व्याख्यान प्रारभके प्रथमही करना बहुत अच्छा है । कई यह शका करते है प्रथम सब एकत्रित होते नही और व्याख्यान समाप्त होनेपर तुरत उठचले जाते है-? इसके उत्तर में विदितहो जिसको धर्म कार्यमें द्रव्य खर्च करनेका विचार होगा वह तो चाहे प्रथम हो चाहे पिछे हा खर्च करेगा ही और जिसको खर्च नही करना है

वह वीचमेंभी कई बहाने कर लेवेगा और एक पैइभी खर्च नही करेगा ऐसे कृपण-कजुसोके धनकी लालसासें अमूल्य शास्त्र वाक्योंमें त्रुटी डालनेमें क्या लाभ ! इससे तो यही ठीक है-चाहे पेस्तर वा प्रथम घृत वगेरा कर लेना देनेवाला देही देताहै ॥ कहाहै कि-" मलयाचल ससर्गान्न वेणुश्चदनायते " याने मलयाचल चदनके साथ रहनेसे घांस चदन नही होता इस प्रकार कजुसभी उदार नही होते-ऐसोंके लिये वक्त गमाना मानों केवल मूर्खता है ॥१२॥

१३ श्रोता -शुद्ध वस्त्र पहरकर व्याख्यानमें जाना लिखा यह बहुत युक्त है किन्तु जिसकी धर्म श्रवणकी बहुत रूची है और धनका अभाव होनेसे नयें वस्त्रोंकी तगी होतो उसने क्या करना चाहिये ?

वक्ता-यदि श्रोताकी शोचनीय स्थितिभी होतो इतना अवश्य वस्त्र चाहिये कि-फटे हुवे क्यो न हो किन्तु धोये हुवे व-दुर्गंध रहीत होने चाहिये । हमें कहतेभी लज्जा आतीहै कि हमारे जेनी कई श्रोता मारवाड प्रभृति देशोंमें रहनेवाले ढुढियोके सहवाससें श्रीमान् होने परभी मलीन-व दुर्गंध युक्त वस्त्र रखते है । पहना हुआ कपडा महीनो गीनती शरीर परसे दूर नही करते, कई स्त्री-पुरषतो छे महीनेतक वस्त्र नही धोते, और न स्नान करते, इससे उनका पशीना और रज मिलकर सम्मुच्छिम जुएं प्रभाति जीवोंकी उत्पति उनकें कपडोंमें और मस्तकके केशोमें होजाती है । शरीरतो उनका इतना दुर्गंध मारने लग जाता है कि-जिनके पास बेठनेको जी नही चहाता ! जुओंकी सख्यातो पारही क्या पासकता है । जैनीयामें ऐसें मनुष्योंके होनेका कारण केवल ढुढिये लोगोंका उपदेशही है । जिनकों ढुढकोका उपदेश लगा है वे जैनी कहलाने वाले स्नान नही करनेमें न कपडे न धोनेमें लाभ समझ रहे है उन्होंनें आनद

प्रभृति-श्रावकोंके चारित्रमें लिखि हुई स्नान करनेकी विधि आखें खोलकर देखना चाहिये। जिनवाणीका श्रवण बाह्याभ्यंतर शुद्ध होकर करना चाहिये। जिसके कपडेमैले उसकी बुद्धिभी मैली हुआ करती है क्योंकी जिसमें अपने बाह्य मैलको साफ करनेकी सामर्थ्य नही वह अन्तरङ्ग बुद्धिगत मैलको कैसे साफ कर सकता है? मलीन देह-व मलीन-वस्त्र धारीयोंपर सरस्वतीकी योग्य कृपा नही रहा करती। इसीसे ढुंढक समाज-प्रायःविद्यामें पीछा गीरा हुआ दीख पडता हैं खैर जैसा सामायक प्रतिक्रमण और देव पूजन शुद्ध वस्त्र पहेरकर करते है तद्वत् व्याख्यानभी शुद्ध वस्त्र पहेरकर सुननेमें बडाही लाभ है ॥ १३ ॥

१४ श्रोताः-इस नियममें स्त्रीयोंके लिये व्याख्यानमें पर्दा (गोसा) न होनेका आपने लिखा किन्तु जिन देशोंमें कदीमी रशमहे वे कैसे तोड सकते है! गोसा व्यभीचारको अटकाने वाला है गोसेसें वाख्यानमें कुछभी हानी पहुचती मालूम नही होती यदि कुछ हानी होतो आप दर्शावें?

वक्ताः-पूर्वादि देशोमें पर्देकी रशम जो चली है यह कदीमी नही है किन्तु मुगलोकी राज्य नीतिके समयसे चलीहै वह काल ऐसाथा कि, अच्छे २ ग्रामाधिपतियोंके घरोकी बहू बेटीयोंका शील रहना कठीनथा, शील रक्षार्थही हिन्दूओंने अपने घरोमें गोसा मारंभ किया, उस समय गोसेके अतिरिक्त शील रक्षाका अन्य उपायही नथा, दुष्ट यवनोंके दृष्टिमें हिन्दू गृहणियो न पडनेमेंही शील रक्षा हो सकतीथी। जिन देशोपर मुगलोंकी सत्ता विशेषथी उन मुल्कोमें पर्देकी रशम अधिकथी और जिन देशोंमें यवनोंका न्यूनपणा उन देशोंमें पर्देकी रसम कम और जिन देशोंमें यवनोंकी

अभावथा—अथवा बिलकुल कमथी ऐसे देशोंमें मुगलोंके समय सेलेकर आजतक पर्देकी रसम बिलकुल नही है। इससे यह स्पष्ट है कि—जिनदिनोंमें व जिन देशोंमें यवनोंका जोर शोरथा—उन दिनोंमें व उन देशोंमें पर्दा उपयोगी उस समयथा अवतो केवल रूढी मात्र रहगया है। पूर्व और पञ्जाबमें गृहणीयोंके लिये पर्देकी रसम इस समयभी अधिक है। और मारवाड—मेवाड—मालवातोनइ तरफा है न उधरका अथात् न पूरा गौसा है न जिन पर्दे वर्ताव है। याने कई लोक कुच्छ कुच्छ पर्दा रखते है कई नही भी रखते है और कईयोंके केवल आडम्बरही है। गुजरातमें केवल नव परिणित वधूएँ अपने ओढनेसे आधा मूह ढकलेती है इतना मात्र गौशा है और दक्षण—कर्णाटक—मद्रास—वराड—खानदेश प्रभृति देशकी गृहणीयें गोसेंसे बिलकुल वञ्चितहै। विचार पूर्वक देखा जायतो इस समय गोसे की—कोई आवश्यता नही है।

यदि देखाजायतो जिन दिनोंमें पर्देकी आवश्यकताथी उन दिनोंमेंभी माता—पिता, घरके अन्यान्य भ्राता वगेरा और धर्म गुरुओंसे आर्य गृहणी ऐं पर्दा नही रखतीथी, इसलिये हम कह सकते है कि जिनवाणीका जहापर उपदेश हो रहा है वहापर पर्दा रखना अयोग्य है। जहापर कर्म रूप पर्दा तूटनेका सभव है तहापर पर्दा लगाने वालोंका अज्ञान अधकार रूप पर्दा किसी हालतमेंभी दूर सकता ? गुरुके सन्मुख आकर पञ्चाग नमन—वदन—स्तवन रना शास्त्र कारोंने कहा वहापर पर्देकी ओटमे ठहरकर जो करते है यह रसम कितनी शास्त्र विरुद्ध है। कई दलील पेश करते है कि हम गुरुओंके लिये पर्दा नही व्याख्यानमें सगे सबधी आते है उनसें पर्दा रख असद हेतु बतलाकर वक्ताको समझा देनेका

अब उत्तरमें यह जवाब पूछा जाता है कि फिर जिन मंदिरोंके सभामंडपोंके दो विभाग क्यों नही बनादिये जाते ? जैसे जिन मंदिरोंमें स्त्री पुरुष एकही सभामें चैत्यवंदनादि कृत्य करतेहै क्या वहां पर सगे सनधी नही हुआ करते ? बस जिस तरह जिन मंदिरोंमें पर्देकी आवश्यकता नहीं है इसी तरह व्याख्यान सभामेंभी पर्देकी जरूरत कुछभी नहीं है। यद्यपि पूर्वादि देशोंमें जिन मंदिरोंमेंबी बीयाँ दर्शनको जातींहै उस समय पूजारीके सिवा मनुष्य नही रहने पाते तथापि यह रसम केवल पूर्वमेंहीहै और अयुक्त रिवाज है। पर्दे और पर्देसे संबंध रखने वाले देशोंमें तो इतनी बेहद गोसेकी चाल पडगई है कि-जलयात्रादि में जैन स्त्रियों न तो स्वाशा जीके पीछे चलती हैं और न जलके कलश उठाती है। और मनुष्य तो बीचारे पाव २ स्वाशेजीके साथ चलते है ओरते मौज शौखसे घोडे गाडीयोंमें स्वार होकर जैसे हवाखानेको जावे वैसी तरह जातीहै। हम इसी वर्षके यानी-विक्रम् संवत् १९६७ के जेष्ट महीनेमें भोपालके जैन मंदीरकी प्रतिष्ठा करवानेको गयेथे वहापर कलसे आदि उठानेका लवण दीपक रखनेका काम पडा तो वहाके लोकोको ब्राह्मणी स्त्रीयोंको कितायेसे लानीपडी । गोसा ईसीका नामहै ? जिन्होंने धर्मसेभी अधिक समझ रक्खा है ? भोपालके महेश्वरी और ब्राह्मणों ने अपनी स्त्रीयोंके लिये ऐसा बेहुदेगोसेका रीवाज नही रक्खाहै इससे क्या उक्त समाजकी स्त्रियो ओसवालोंकी स्त्रियोंसे नीचे दर्जेकी हो सकती है ? कभी नही। तात्पर्य व्याख्यानमें पर्देकी कोई जरूरत नही है जिन स्त्रियोंको सगे सबंधीयोंकी लज्जा आतीहो वेस्त्रिया चाहें अपने ओढनेसे अपने मूहको ढांक लेवें। जिन देशोंमें पर्देकी रसम है उन स्थानोंमें हमारी दृष्टिमें देखा है कि पर्देके भीतर बैठी हुई ओरतें आपसमें हर्सी ठिठ्ठो बातें करा करती है।

पाव कर बेठती है, भीत नगरेके आधारसें बेठी हुई सुस्ते मुह बे फाम हसती हुई बेठी रहती है, कोईकोईतो सोभी जाती हैं। क्या यह लक्षण व्याख्यान सुननेके है ? क्या ऐसे करनेसे श्रुतज्ञान व ज्ञानका अविनय नही होता ? पर्दा करनेसे व्याख्यान सभा एक प्रकारसे उनका घर होजाता है। ऐसे होनेसे जो धर्मात्मा स्त्रीया हैं उनको वे स्त्रिया व्याख्यान सुननेका आनंद नहीं आने देती। देखा जायतो यही मार्ग उत्तम है कि श्रोता (स्त्री-पुरुष) वर्गने वक्ता गुरु (अध्यक्ष) के दृष्टिके भीतर बेठनेसे ही सभाकी सुव्यवस्था रह सकती है। वक्ताकी दृष्टिमें बेठनेमें यह बडा लाभ है कि जिस श्रोताकी वर्तणुक सभाके नियमाके विरुद्ध वक्ताको दीख पडनेपर, तुरत उसे शासन शुरु कर सकते हैं इससे नियम टूटनेका भय नहीं रहता कई जो यह कहते हैं कि पर्देमें रहनेसे अनभी स्त्रियोंके शीलकी रक्षा हो सकती है किन्तु यह बात गलत है, इस कालमें स्त्रियाकी ऐबको छीपाने वाला पर्दा समझना चाहिये पडदेके भीतर वे चाहेतो चाहे वैसा अन्याय धोलेदिनभी कर सकती है और बिनगोसे धोले दिन अन्याय अनाचार सेवनकरना बडाही मुश्किल होजाताहै। पर्देमें रहने वालीसभी स्त्रिया कुलट व्यभीचारणी नहीं हो सकती और पर्देमे न रहनेवालीसभी स्त्रिया पतिव्रताएँ नहीं हो सकती किन्तु पर्देमे रहनेसें पतिव्रत धर्म बराबर पलताहैहै ऐसे कहने वालोका पक्ष अनुचित पक्ष है। महाराष्ट्र-कर्णाटक-मद्रास (मलबार) प्रभृति देशोंमे राजाओकी स्त्रियोंसे लेकर संपूर्ण ज्ञातियोंकी स्त्रियाको बिल कुलही पर्दा (गोसा) नहीं होता तो क्या महाराष्ट्र देशकी स्त्रिया शीलवान् पतिव्रता धर्मको पालन करने वाली नहीं है ? क्या महाराष्ट्रकी स्त्रियोंको कोई सभ्यतासे वंचित कह सकता हैं ? हमारी समझमें तो विद्या-उद्योग प्रभृति उत्तम स्त्रियोंके गुणोंमें महाराष्ट्र

स्त्रियोंके साथ स्पर्धा करनेमें सौसे वाली स्त्रियोमे कमही निकले गी। महाराष्ट्रदेशके रहने वाले-ब्राह्मण-क्षत्रिय प्रभृति उच्च ज्ञातिके स्त्रियोंमें आखोंकी लज्जा, महाराष्ट्रीय स्त्रियोंकी प्रतिभा, महाराष्ट्रीय स्त्रियोंकी पतिभक्ति, महाराष्ट्रीय स्त्रियोंका धर्माचरण व सदाचार, और महाराष्ट्रीय स्त्रियोकी नीति एव रीति की बराबरी पर्देमें रहने वाली स्त्रिया हर्गिज नही कर सक्ती। पर्देके पक्षकरोंको यह विचार करना बहुत जरुरी है कि, जिस स्त्रीके आखोंमें लज्जा है वह स्त्री कुल मर्यादाका उल्लघन व व्यभीचार सेवन किसी हालतमें न करेगी और जिन स्त्रियोंके आखोंमें लज्जा नही है ऐसी स्त्रियोंके लिये चाहे एक क्यों लाख पर्दे करदो, चाहे नगीतल्वारोंके पहरेमें रख दो ओर चाहे लाख तालाओंके भीतर बद करदो मगर ये कष्ट उठानेपरभी बद चालको कभी नही छोडेगी, अयोग्य-व अनुचित कर्म करनेमें वे कभी नही डरेगी। और लज्जावान्-व-नीतिवान् जो स्त्रियां है उनके लिये चाहे कुछभी प्रयत्न न करो मगर वे बराबर नीति मार्गसे चलायमान न होगी तात्पर्य पर्दा रखनेसे पतिव्रत धर्म रहता है वा पर्दा न रहनेसें पतिव्रत धर्म्म नही रहता यह कहना व्यर्थ है। पर्दा रखनेकी इस समय कोई आवश्यकता नही है।

मारवाडी स्त्रिया होलीके दिनोंमें और विवाहोमें निर्लज्ज होकर अश्लिल गाना (गालीया) गाती है, अयोग्य-व-असभ्य शब्दोंका मुहसे उच्चार करती है, और-भाई-बेटा-बाप-मा-सगे सबधी सुना करते है, तबतो उनको लाज नही आती और व्याख्या न सभामें उनको पर्दे विना बेठनेमें लाज आती है इससें मारवाडी स्त्रियोंकी लज्जाकी प्रशसाकी जाय इतनी थोडीही है ? लज्जा होतो ऐसी हो ! न मालुम विवाहोमें अश्लिल गाना गातीया है उस वक्त उनके सगे सबधी कहा चले जाते होगे ! वास्तवमें-देखा जायतो

जहा पर लज्जा करनेका स्थान है वहा परतो करती नहीं और न लज्जा करनेके स्थानपर करती है। नागपुर-वर्धा-प्रभृति-सी. पी प्रान्त के रहने वाले मारवाडी लोक-बहुधा-अपनी स्त्रियोंके लिये व्याख्यान सभामें पदा रखते है। ये पर्देमें बेठने वाली स्त्रिया राज मार्गमें (रस्तेमें) विनगोसे पावोंसे चलकर आती है और विनगोसे ही घरोंमें रहती है और विनगोसे ही एक शहरसे दूसरे शहरको जाती है कुल व्यवहार विनगोसे होता है और व्याख्यानके भीतर उनके लिये गोसा होना चाहिये, देखीये यह कैसा गोसा ! क्या यह पर्देकी फजीति नहीं है तो और क्या है । मुनि महाराज श्रीमान् शांतिविजयजी और हम जहांपर गये वहांपर प्रयत्न द्वारा व्याख्यानमें पर्दा हम लोकोंने नहीं करने दिया इसी तरह अन्य वक्ताओंनेभी ऐसी कुप्रथाओंको अटकानेका प्रयत्न करना बहुत जरुरी है।

हम जब पूर्व देशकी यात्रा करनेको गयेथे उन दिनोंकी बात है कि-सम्मेतशिखरजीकी यात्रा करके पीछे लोट ते वख्त गीरेडीष्टेशन परकी श्वेतांबर जैन धर्मशालामें एक कमरेमें हम कुछ रोज ठहरेथे-उन्हीं दिनोंमें पूर्व देशके रहेने वाले एक सभ्य जैनबाबू सहकुटुंब हमारे कमरेके नजदीकके कमरोंमें ठहरे हुवेथे, बात यह हुईकी उनकों आने जानेका मार्ग हमारे कमरेके नजदीकसे था इससे जब जब उनकी बीबीयोंको जाने आनेकी जरुर पडती तो पेस्तर एक आदमी आकर हमको कहताकी-गुरुजी साहब बीबीजी साहबको इधरसे जाना है इस लिये आपके कमरेके दरवज्जेमे बंध कर देताहूं एसा कहकर दरवज्जे हमारे कमरेके उनका नोकर बंध कर देताथा और जब उनकी बीबीया रास्तेसें निकल जाती तो तुरतही पीछे खोल देताथा, एक दिनमें कइदफा इस प्रकार हुआ करता, तीसरे या चोथे रोज दैव वशात् यह घटना

हुई कि-उक्त बाबू सहाय के कुटम्बमेंसे एक बीबीजी बीमार हो गये। इससे उक्त बाबूजीने हमसे इलाजके लिये कहा, हमनेंभी अपने श्रावक समझकर उनके कमरेमें गये और ईलाज करनेपर धर्म प्रसादसे वह बीबीजी तन्दुरस्तभी हो गये बाद एक रोज हमने कहा कि आपके यहा पेस्तर तो हमसे गौसा रक्खा गयाथा और अब क्यों नही तो बाबू सहावने हसकर उत्तर दियाकि महाराज! कही गुरुओंसेंभी गौसा हो सकता है? देखिये यह गौसेका वृतान्त । बीबी सहाव बीमार हुवे बाद-हमारे कमरेके दरवज्जे-जो बध किये जातेथे वेभी फिर बधनहोने लगे और न किसी प्रकारका फिर गौसा रहा इस कथाको लिखनेका मतलब इतनाही है कि गौसा पूर्वमेंभी मत लावकाही हमें तो विदित हुआ, इससे धर्म कार्योमें और विशेष तया व्याख्यान सभामें स्त्रियोंके लिये गोसा करना वहुत अनुचित है। इस बातको चाहे कोई माने या न माने मगर यह रसम इस समय कुछ उपयोगी नही है हम यह अच्छी तरहसे जानते है कि "अन्त-सार विहीनाना-मुपदशो न जाय ते" याने गभीरता विहीन पुरुषों को शिक्षा देना सार्थक नही होता, अथात् उपदेश नही लगता और हम जानतेभी है कि पर्दे के कट्टर पक्षकारोंको सहसा यह बात नही रुचेगी किन्तु अन्तमें सत्यकाही जय है यह विचार कर हमने योग्य समीक्षा की है इससे आशा है कि समझदार लोक इससें विरुद्ध कभी मत न देंगे ॥ १४ ॥

श्रोताः-प्रभावनाके सबधमें आपका कहना बहुत दुरस्त है-किन्तु-कोई गरीब हो और प्रभावना करना धारे तो वह स्वपर धर्मीको कैसा दे सकता है?

वक्ताः-क्यों नही दे सकता चाहे थोडी देवें मगरदें सबको समान कई लोक अपने नाति वालोकोतो अधिक देते है और दुस

रोंको थोडी २ देतेहै यहभी अनुचित है। और कही २ अन्य धर्मियों को विलकुलही नही देते यह बहुतही अनुचित है। और जो लोग परस्पर द्वेष वशवा-शोक सताप वश प्रभावना लेत देते नहीं यह केवल अज्ञता हैं। धर्म काममें शोक सताप रखनाही नही कहा, कई लोक जो व्याख्यानमें शोक चिन्ह (शिरपर पटा) लेकर आते हैं वे शास्त्र विरुद्ध करते है, जिन मन्दिरमें गुरुद्वारमें, और राज्य सभामें शोक चिन्ह युक्त जाना अयोग्य है। इससे प्रभावना लेने देनेमें शोक सताप नही करना। और प्रभावना व्याख्यान हुवे वाद-जिन मदिरमे और गुरुके भेट धरकर फिर दूसरोंको देनी चाहिये ॥ १५ ॥

श्रोता -हे मुनीन्द्र ! उपरोक्त नियमाके सबधमें जहा पर मुझे शकाऍथी वह शकाऍ आपके इस विवेचनसे दूर हो गई। यदि व्याख्यान सभाके लिये उक्त नियम सर्वत्र पालन होने लग जायतो वक्ताका उपदेश असर करे विना कभी न रहे। और यहा तक बात औरभी अच्छी होजाय कि-जो जैन समाज सुवक्ता-कुवक्ताकी परीक्षा नही कर सकताहै वह उपदेशके प्रेमी हो जानेसे सुवक्ताकी शीघ्र कदर करने लग जावेगा इससे कुवक्ताओके उपदेशका स्वतण्व अभाव हो सकता है। मेरी दृष्टिमें आजतक इस विषयका ग्रथ जैन समाजकी ओरसे छपाहुआ या लिखाहुआ देखनेमें नहीं आया इससे यह निबध छपनेका प्रयत्न होतो बहुत अच्छा है। इस ग्रथमें आपने व्याख्यान सभाके लिये जो अकाट्य युक्तियों द्वारा नियम दर्शायेहे यह अत्यत प्रशसनीय है। भव्य जीव निष्पक्ष दृष्टिसे इस ग्रथका अवलोकन करनेपर तुरत रूढी-रसम-कुप्रथाकों त्याग देनेका सभव है। अखिरमें कहनेका यह है कि-यति-मुनि-ओर श्रावक प्रभृति जैनी मात्रके पढने योग्यहै।

वक्ताः—आपका कहना सत्य है किन्तु कहा हैः—

यस्यनास्ति स्वयंप्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति ॥४॥

तात्पर्यः—जिसको स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या कर सकता है ! अर्थात् कुच्छ नहीं कर सकता जैसे, आंखोंके हीनको याने अन्धको दर्पण क्या करेगा ? याने अन्धको दर्पणमें कैसे मुख दीख सकता है ?

इस प्रकार यदि कोई इस ओर लक्ष ही न देंगेतो यह क्या लाभ पहुचा सकता है ? मगर खेर हमारे जैन विद्वानही इस ग्रंथको देखकर कुच्छ विचार करेंगे तो हम वहुत कुछ लाभ हुआ समझेंगे।

श्रोताः—समय वहुत हुआ है अब आपकी आज्ञा चहाताहूँ फिरभी दासके योग्य कोई कार्य होतो फरमावे, फिर किसी समय आपकी सेवामें हाजिर होउंगा।

वक्ताः—अच्छा ! जाइयें और धर्म ध्यान करते रहीयेगा।

पाठकवर्ग ! उपरोक्त । प्रश्नोत्तरोंसे आप भली भांती समझ गये होंगे ? और उपरोक्त नियम पालन करना जैन सृष्टिको कितना आवश्यक है यहभी आप जान गये होंगे

उपसंहार

उपरोक्त नियमोंके विरुद्ध व्याख्यान सभामें वर्ताव करने वाले को वक्ता (अध्यक्ष) को शासन करनेका अधिकार है। चाहे, समझादे देवें, चाहे सभासे वहीं दूर करदेव यह बात अध्यक्षकी इच्छा पर निर्भय रहै। यदि कोई यहांपर यह कहे कि—यह नियम कबसे

और किसने चलाये और अध्यक्षको यह अधिकार कबसे मिला हुआ है ? तो इसके उत्तरमें हमें यह कहनाही होगा कि जिस दिन से उपदेश करनेका अधिकार धर्म गुरु वक्ताको मिला है, उस दिनसेही यह नियम चले हैं। उपदेष्टाओंने उपरोक्त नियमों पर चलना, और श्रावक (श्रोता) वर्गको चलना यह अधिकार अनादि कालसे वक्ताओंको मिला हुआ है। मस्तुत जो पाश्चिमात्य देशोंकी अनुकरण करने वाली सभा समितियां है (फिर चाहे किसी व्यापारी कपनीकी सभा हो, वा धर्म सभा हो, अथवा समाज सुधारणेकी सभा हो वा युनिवर्सिटी अर्थात् शिक्षा विभागकी सभा हो) उनके नियम बंधे हुवेही रहा करते हैं और उक्त सभाओंमें अध्यक्षका अधिकार सभाकी सुव्यवस्था रखनेका होताहै तो फिर; अनादि कालसे चली आई हुई जैन धर्म महा सभाके वक्ता अध्यक्ष को-सुव्यवस्था रखनेका अधिकार क्यों नही है ? और यदि अधिकार नहोतातो आजतक धर्म सभा कैसे ठहर सकी ! इससे हम कह सकते हैं कि वक्ताको सभाकी सुव्यवस्था रखनेका अधिकार अनादिसे मिला हुआ है। और नियम विरुद्ध वर्ताव करने वालों को उचित शासन कर सकता है। आज कालके मुनि वक्ता प्रमाद बश अपने अधिकारको भूल बैठे है इससे अनवस्थाहोती है। देखिये'—मुनि महाराज न्या. न्या. श्रीमान् शान्ति विजयजी श्रोता वक्ता के संबंधमें क्या फरमाते है ध्यान देकर पढ़िये —

" शास्त्र वचनपर श्रद्धावान् और उदार श्रोता धर्मकी उन्नति कर सकता है, धर्म शास्त्रका अवर्ण वादि श्रोता अगर कुतर्क करके अपनी मूर्खता जाहिर करता होतो मुनासिब है कि उसको ताढना तर्जना करना, आवश्य सूत्रके पहले अध्ययनका वचन है कि-विनय रहित शिष्यके साथ बलाभियोग यानी ताडना तर्जना कर

क, जो साधु अपनी महत्वताके लोभी बनकर ताडना तर्जना नही करते वे अलबते ? इस लोकमें समतावान् कहलाते है लेकिन ज्ञानी ओंके ज्ञानमें महा अन्यायी समझे जातेहै । क्यों की– उन्होने न्याय मार्गका लोपकिया और अपनी वाह वाह करवाई ",

मानव धर्म संहिता पृष्ट ४१८

फिर आप क्या फरमाते है देखियेः–

"आज कल खुशामदीये लोक ज्यादे रहगये, साधु जनभी अपने निस्पृही धर्मको छोड खुशामदीयें बनते चले जाते है, कहिये ! फिर सच्चे धर्मका उपदेश कैसे हो सकेगा "

मानव धर्म संहिता पृष्ट ४१६

फिर आप लिखते है किः–

"कई ऐसे मायावी है जो साधु होकरभी दगा बाजीको नही छोडते, साधु लोगोने ससार छोड दिया है तो अब मुनासिब है साफ दिलर हैं, और सचे धर्मका उपदेश देवें "

मानर धर्म संहिता पृष्ट ४१६

आप लोक मुनिराज श्रीमान् शांतिविजयजी महाराजके विचारोकोभी भली भाती समझ गये होंगे ! कई जो यह कहते हैं कि मुनियोंने तो क्षमाही रखना चाहिये किन्तु क्षमाके लियेभी कुछनियम है अनिमियत क्षमा नही होती देखिये क्षमाके लिये क्या कहा हुआ हैः–

मनागनभ्यावृत्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण–विराध्यन्तं क्षमेत कः ॥

शिशुपालवधसर्ग २ श्लोक ४३

भावार्थः—जो क्षमा शील पुरुष है वह कईवार थोडा थोडा अपराध करने वालेको या एकवार बहुतसा अपराध करने वालेको भलेही क्षमा करदें, पर वार वार और एकसे एक बढकर अपराध करने वाले आदमीको कोई कैसे क्षमा करे ? अर्थात् न करे।

देखिये ! इससेभी यही सिद्ध होता है कि वारवार अपराध करने वालेको क्षमा शीलभी माफी नहीं दे सक्ते। और व्याख्यान सभामें व अन्यान्य कार्योंमें श्रोताओंका अपराध असह्य हो पडा है ऐसे समयमें एकान्त क्षमाही फलदायिनी नही हो सकती ! कई श्रोता वक्ता गुरुका पराभव करनेमेंभी भय नही करते, वे अभिमान वश वक्ता गुरुको कुछ चीज ही नही समझते, क्या ! ऐसे समयपर क्षमा करना युक्त हो सकता है ? कभी नहीं। कहा है—

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरते ष्विव ॥

शिशुपाल वध सर्ग २ श्लोक ४४

भावार्थ.—मनुष्यके लिये क्षमा भूषण है किन्तु परिभव (अपमान) के वक्तको त्याग कर सर्वत्र भूषण है। जैसेही स्त्रीके लिये लज्जा भूषण है किन्तु पतिसह सुरत क्रियाके समयको त्याग कर लज्जा भूषण है। तात्पर्य—पुरुषको पराभव के वक्त तो क्षमाको त्याग कर पराक्रम—यानी पौरुष करनाही भूषण है और स्त्रीको पतिसह संयोग समयपर धीठता पूर्वक लज्जाका त्याग करनाही भूषण है। विचारका स्थान है कि जहां समझाने परभी नही समझते और न्याय मार्गका लोपकर रहे हैं 'वहांपर क्षमा' करनी क्या युक्ति युक्त हो सकती है ? ऐसे अवसरोंमें क्षमाकरनेसेही अध्यक्षको जो अनादिसें अधिकार मिला हुआ है वह इस समय

प्रायः तूल झगडा हो रहा हैं। इससे अध्यक्षको उचित है अपने अधिकार की ओर लक्ष पहुचाना ! व्याख्यान सभा परमार्थिक सभा हैं इसमें श्रोता तथा वक्ताकी स्वार्थ बुद्धि होनेहीसें नियमोंका भग होता हैं इस लिये धर्म्मोपदेशके समयपर श्रोताओने स्वार्थ बुद्धिका त्याग करनाही श्रेयस्कर हैं।

व्याख्यान सभामें अयोग्य वर्ताव होनेपर सद्वक्ताका मनः उन श्रोताओंसेनाराज हुवे बिना किसी हालतमें नहीं रह सकता, और नारीज होनेपर न वक्ताको कहेनेका उत्साह वढता और न सुनने वालोंको आनद आसकता। और नियमोंका पालन होनेसें श्रोता और वक्तामें परस्पर प्रीतीकी वृद्धि होनेका सभव हैं और प्रेम पूर्वक दोनों मिलकर काम करनेसें धर्म्मोन्नतिके कार्योमें आपत्ति नही आ सकती, अतएव नियमोंका पालन करना हीं उन्नतिका कारण हैं।

हरेक गाम या शहरमें दो चार विचारी पुरुष श्रोताओमें अवश्य निकलेहोंगे उनको यह चाहिये कि–गुरुओंके साथ किस तरह पेश आना वा सभामें किस प्रकार जाना आना वा व्याख्यान किस प्रकारसे सुनना यह अज्ञ (बाल) जीवोंको समझाते रहना और जिस प्रकार गुरुओंसें डरें वा–जिस प्रकार गुरुओंपर पुज्य बुद्धि रक्खे और गुणी–जनोंका वहुमान करे ऐसी शिक्षा बारबार देते रहनेसे–वक्ता गुरुके कटु–शब्द स्वप्नमेंभी सुननेमें नहीं आवेंगें ! यदि कोई भुल जाय और उसके लिये वक्ता कुछ कहें तो एक परसे सबने बोध लेलेना चाहियें और वक्ता जिस बातके लिये मना करते हैं वह कार्य आइन्दें नही करना चाहिये । और सभी श्रोताओंने वक्ता गुरुके कटु शब्दोंको अपनि भावि उन्नतिका कारण मानकर आदर करना–व–उनपर लक्षदेना चाहिये। जो

मनुष्य गुरुओंकी वाणीसें तिरस्कारको प्राप्त नही हुआ वह महान् पद वा महत्वताभी प्राप्त नही कर सकता कहाहै.—

"गीर्भिर्गुरूणा परुषा क्षरामि,
स्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्वम् ।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां,
न जातु मौलौ मणयो वसन्ति ॥ "

भा. वि

भावार्थ—गुरुके कठोर शब्दासें जिनका तिरस्कार होताहै वेही मनुष्य महत्वको प्राप्त होते हैं, जैसे विना खरादपे चढाई हुई मणी यां राजाओंके मुकुटोंमें कदापि वास करने नही पाती। अतएव गुरुओंके वाणी द्वारा तिरस्कार पानाभी कोई अनुचित नही हैं इससे यह सिद्ध होगया कि गुरु जो कुछभी कहते फायदेके लिये कहते हैं इससे उनका कहना शुभ फलका देने वालाहै ।

कई लोक विद्वानोंकी क्रोधयुक्त वाणी सुनकर सहसा यह कहदेते है कि विद्वान होकर क्रोध क्यों ? मगर हम उनकों अविचारीही कह सकते है सत्पुरुष विना कारण कभी क्रोध नही करता और विद्वान्–सत्पुरुषोंका क्रोधभी अच्छा और मूर्खोंकी कृपाभी बुरी । कहा है:—

"निश्चाभिरामगुणगौरवगुम्फितानां
रोषोऽपि निर्मलधियां रमणीयएव,
लोकपृणे परिमले परिपूरितस्य,
काश्मिरजस्य कटुतापि–नितान्तरम्या "

भा. वि.

अर्थः-ससारके परमोत्तम गुण गौरवको धारण करने वाले निर्मल बुद्धि पुरुषोंका क्रोधभी मनोहर होता हैं। मनुष्योंको संतोष देनेवाली सुगंधसे परि पूरित केसरकी कटुतापि अच्छी लगती हैं॥

इस काव्यकारकाभी यही आशयहैं कि सत्पुरुष यदि कुछ कटु शब्द कहेतो उन्हें कटु न मानकर हितकरही मानना। वक्ता गुरुओंकी कोटी गुण गौरव धारण करने वालोंमें होनेसे उनके कटु शब्दभी श्रोताने हितकर लाभ दायक मानना। फिरभी कहाहै कि-

"अनवरतपरोपकारव्यग्रीभवदमलचेतसा महताम्।
आपातकाटवानि स्फुरंति वचनानि भेपजानीव॥"

भा वि

तात्पर्यः-विमल अन्तःकरण वाले, परोपकार करनेकी- चिन्ता मे निरंतर व्यग्र रहने वाले सत्पुरुषोंके वचन औषधके समान आदिमें कटु होते है जैसे भेषज खानेके अनन्तर गुण जान पडता हैं उसी प्रकार सुजनोंके कटु शब्द आगे महा मगलकारी होते है।

उपरोक्त प्रमाणोंसे पाठक भली भाती समझ सकते है कि-उपदेष्टा यदि कटुकहै तोवह दोषी नही ठहरता। मैं आशा करताहू कि-जो लोक व्याख्याताको कटु बोलनेपर क्रोधी कहते है वे यह ग्रथ पढे वाद विचारी पुरुषतो अव कभी नही ऐसा कहेंगें और अविचारीयोंके लिये तो "ब्रह्मापिचर्त नर नर जयति" तो मैंस्याचीजह।

अब मैं ग्रथ समाप्ति पर शासन नायक श्री चरम तीर्थंकर महावीर प्रभुसे यही प्रार्थना करताहू कि-हे प्रभो! हमारे जैनीयोंके हृदय शुद्ध विचार वाले ... रुची बढो

नाश हो, परस्पर धार्मिक प्रेमकी वृद्धि हो, धर्माभिमान सारे जैं
योंके हृदयमे सतत निवास करो ? और जैन समाज सारे सस
का उद्धार करनेकी सामर्थ्य प्राप्त करनेमें भाग्यशाली हो, यही,
री हार्दिक ईच्छा है।

खामगाव (वराड)
आश्विनशुक्ल १३ रविवार
सवत् १९६५ वि

जैन धर्माऽभ्युदयचिन्तक,
बालचंद्र मुनि.

अर्हम् ।

व्याख्यान परिषद्विचार ॥

लेखक -

(वादी) मानमर्दनाग्र-भिषग्ल्ल-जैन श्वेताम्बर-

धर्मोपदेशक-यतिवर्य श्रीमन्महाराज-

बालचंद्रजी-मुनि ।

प्रकाशक,-

मलकापुर-निवासी-श्रावक-गुलाबचंद-सचेती-

हरिरामजी-धनराजजीके-दुकानके मालिक ।

अमदाबाद-धी-सिटी-प्रिन्टींग प्रेसमें

शाह चंदुलाल छगनलालने छापा ।

वीर-संवत्-२४३७-विक्रम संवत् १९६८

मूल्य-आठ-आना ।

५–ओसवलोंका–इतिहास.–(छपाना बाकी है) ४ भागमें विभक्त होगा १–भागमे ओसवाल उत्पत्ति–गोत्र आदिका विचार। २–भागमे जैनाचार्योंके निरर्गोका स्वीकार और संरगोत्रा विचार। ३–भागमें ओर अवनतिका कारण, मथेनोंके सहवाससे और अन्य दर्शनी सहवाससे मिथ्यात्व मेरनकी वृद्धि–और कुप्रथाएँ वढनेका ४–भागमें ओसवालोंका आधुनिक स्थितिका दिगदर्शन और उ होनेका उपाय बतलाया इसके औरभी बहुतसे विषय इसमें चर्चे गयेहै। इस ग्रंथके अंदर उक्त बातोंका संग्रह करनेमें बहुत खर्चा है और अभीभी एकहज्जार रुपयोंकी जरूरतहै। ओसवालोंमें धनवान है। यदि इसके छपानेमें पूरा–या–आधा सर्वर्ग देना महाभाग स्वीकार करेगा तो–इस ग्रंथमें–उसका सुंदर चित्र (फो देदिया जायगा. और अग्रिम मूल्य भेजने वालोंके नाम सहाय तार्थोंकी श्रेणीमें छपादिये जायगे. ।

पुस्तकें मिलनेका पता:–

यतिजी बालचंद्रजी केवलचंद्रजी ।

पोष्ट–खामगाव–प्रांत–(वराड)

—०—